श्री तीर्थराम जी द्वारा
प्रदत्त

ओ३म्

वैदिक अध्यात्म ज्योति

प्रभु भक्ति के ४०० वेद मंत्रों का संग्रह

बोध रात्रि संवत् २०२६

जन ज्ञान मासिक

शिवरात्रि की वह घड़ी जब बालक "मूल" अध्यात्म की राह पर

॥ ओ३म् ॥

जन-ज्ञान [मासिक] का
(विशेषांक)

वैदिक
अध्यात्म-ज्योति

प्रभु भक्ति के चुने हुए
४०० वेद मन्त्रों का
अर्थ सहित संग्रह

●

—स्व० "शान्त" स्वामी अनुभवानन्द जी सरस्वती

जन-ज्ञान (मासिक)
१५९७ हरध्यानसिंह रोड,
नई दिल्ली-५

भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार
के संरक्षण-निर्देशन में
प्रकाशित

सम्पादक
—राकेश रानी—

वार्षिक मूल्य १०)
एक प्रति ८० पैसे
विदेश में १ पौंड

इस अंक का मूल्य २)

धरती के प्रत्येक मानव के हृदय मन्दिर पर "वेद ज्ञान" की पावन पताका फहराने के लिए कृत संकल्प
आर्य जनता का
अपना
प्रतिनिधि-प्रकाशन

फोन नं० ५६६६३६

आर्य समाज सदर मेरठ हीरक जयन्ती महोत्सव (६-७-८-९ मार्च १९७०) के अवसर पर धर्म प्रेमी जनता को यह "अध्यात्म ज्योति" सादर अर्पित ।

आर्य श्रेष्ठ-दानवीर—वेद के अनन्य भक्त

राय साहिब चौ० प्रतापसिंह जी

करनाल निवासी

ने

इस 'अध्यात्म ज्योति' के प्रकाशन में ५००) देकर प्रभु का प्रकाश फैलाने में योग दिया। "जन-ज्ञान" उनका अत्यन्त आभारी है।

—सम्पादक

"जन-ज्ञान" का अगला अप्रैल अंक

"योग" विशेषांक

होगा। यह दिल्ली के प्रसिद्ध कर्मठ आर्य एवं विचारक श्री हुकमचन्द जी (बग्गा) की अनमोल कृति है। उन्होंने अपने जीवन के अनुभव के आधार पर "योग" को सरल और ग्राह्य रूप में प्रस्तुत किया है।

बढ़िया कागज पर इस अनमोल ग्रन्थ का मूल्य २) है। किन्तु प्रचारार्थ यह अंक १५) की १० प्रति और ३५) की २५ प्रति। ६०) की ५० प्रति और १००) की १०० प्रतियां केवल २० मार्च तक आदेश धन सहित भेजने वालों को दी जाएंगी।

तुरन्त आदेश भेजें

व्यवस्थापक

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

सम्पादकीय
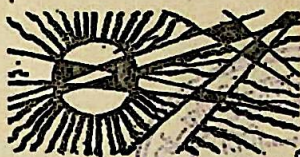
अध्यात्म की पुकार

शिवरात्रि, शिव की आराधना के पवित्र दिन देव मन्दिर में पाषाण पूजा में व्यस्त बालक मूलशंकर की अध्यात्म भावना मिट्टी के मन्दिर में पूर्ण न हो सकी, प्यास जागी, प्रकाश पाने की, अन्धकार में मन घबराया तो "मूल" दयानन्द बन कर प्यास की पूर्ति की खोज में घूमता रहा। ज्ञान की खोज पूरी हुई तो "दयानन्द" ऋषि दयानन्द बन गया।

हमारा गुरु दयानन्द वस्तुतः धरती के कोटि-कोटि प्रभु पुत्रों के हृदय में अध्यात्म की प्यास जगाने का इच्छुक था। जीवन का 'सत्य शरीर' नहीं, "आत्मा" है। यह ज्ञान मनुष्य मात्र को देने के लिए युग प्रवर्तक देव दयानन्द ने अपनी पूर्ण शक्ति से सभी को झकझोरा था।

शिवरात्रि आज भी आयी है, हम मौखिक श्रद्धांजलियाँ देकर इसे मनाएंगे किन्तु आप के अन्तर में जो जीवन की, अध्यात्म की, सत्य की पुकार है उसे सुनने का क्या आप के पास समय है ?

प्रभु से मिले विना जीवन में रस नहीं। प्राणों में गति, गति में आनन्द का अमृत प्राप्त करने के लिए प्रत्येक मनुष्य को सारे भेदभाव छल-कपट छोड़ प्रभु के चरणों में आना ही होगा। अपना सभी कुछ प्रभु को अर्पित कर उसके प्रकाश से जीवन को ज्योतित् कर हम जब अपनी जीवन यात्रा आरम्भ करेंगे तब वस्तुतः हमारा मानव जीवन आरम्भ होगा।

हम प्रभु की राह पर चल सकें इसी उद्देश्य से प्रभु की अमृतमय वेद-वाणी का कुछ प्रसाद आप की सेवा में एक महान् संन्यासी के भाष्य के साथ अर्पित है—इसे ग्रहण कर सभी जीवन सफल बनाएं···प्रभु कृपा करें कि हम सत्य को समझ उसे अपना सकें।

—राकेश रानी
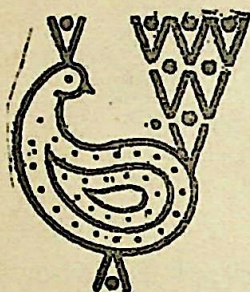
संदेश : श्रद्धाँजलियाँ

१. भारत के महामहिम राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरी

"यह जान कर प्रसन्नता हुई कि "जन-ज्ञान" के विशेषांक प्रकाशन का आयोजन किया जा रहा है। आपके प्रयास की सफलता के लिये शुभकामनायें"

२. भारत सरकार के राज्य मन्त्री (सूचना और प्रसारण मन्त्रालय) प्रो० शेरसिंह—

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि पूज्य महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्म दिवस के अवसर पर 'जन-ज्ञान' का विशेषांक प्रकाशित हो रहा है। मैं इस सद्‌कार्य की हृदय से सराहना करता हूँ।

स्वामी दयानन्द जी महाराज आजीवन सामाजिक कुरीतियों और बाह्याडम्बरों के खिलाफ लड़ते रहे और मानवमात्र के आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नयन के लिए वे संघर्ष करते रहे। ऐसे महामानव के जन्म-दिन पर उनके दिखाये मार्ग पर चलने का हमें संकल्प लेना चाहिए और उनके दिव्य आदर्शों को जन-जन तक पहुँचाना चाहिए। आपका यह विशेषाँक इस दिशा में एक प्रयत्न है। मैं इस प्रयत्न की हृदय से सफलता चाहता हूँ।

३— पंजाब प्रान्त के मुख्यमंत्री श्री गुरनाम सिंह—

मुझे यह जान कर हर्ष हुआ कि आप महर्षि दयानन्द जी के जन्म दिवस के अवसर पर अपने 'जन-ज्ञान' का विशेषांक प्रकाशन करने जा रहे हैं।

महर्षि जी को सब से उत्तम श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उन के दर्शाए हुए मार्ग को अपनायें।

इस शुभ अवसर पर मैं महर्षि दयानन्द जी के चरणों में श्रद्धांजलि के पुष्प अर्पित करता हूँ।

४—सार्वदेशिक सभा के मंत्री संसद् सदस्य श्री रामगोपाल

महर्षि दयानन्द ने मानव मात्र के कल्याण के लिए जो मार्ग दिखाया था, वही मार्ग सभी को शांति, एकता, और प्रेम का सच्चा संदेश दे सकता है।

शिवरात्रि के दिन सभी को यह व्रत लेना चाहिए कि हम अपने महान् गुरु देव दयानन्द का काम पूरा करेंगे। वेद के संदेश का प्रचार और उस पर आचरण ही संसार को स्वर्ग बना सकता है।

५—गुजरात के कर्मठ आर्य नेता श्री पं० आनन्दप्रिय—

ऋषिदयानन्द ने हमें जीवन दिया है। हम अपना जीवन और सर्वस्व भी यदि दयानन्द के चरणों में अर्पित कर दें तो यह सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

अंधेरा और निराशा फैल रही है। इस सब में सत्य और आनन्द को जीवित रखने के लिए वेद का प्रकाश सब फैलायें यह समय की मांग है।

६—दक्षिण के आर्य नेता श्री पं० नरेन्द्र—

भारत के गौरव और संस्कृति, धर्म और परम्परा पर संकट मंडरा रहा है। आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य का यह कर्तव्य है कि वह महर्षि दयानन्द की ज्योति प्रज्वलित कर राष्ट्र को सर्वनाश की ओर बढ़ने से बचाएं।

वैदिक राष्ट्रगीत

ब्रह्मन् स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेज धारी।
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी॥
होवें दुधारु गौवें, पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही॥
बलवान सभ्य योधा, यजमान पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षें पर्जन्य ताप धोवें॥
फल-फूल से लदी हों औषध अमोघ सारी।
हो योग-क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी॥

आज ही

"जन-ज्ञान" के सदस्य बनिए

वैदिक विचारधारा को धरती के प्रत्येक मनुष्य के मन-मन्दिर में प्रतिष्ठित करने के लिए—

आप 'जन-ज्ञान' के सदस्य बनिए

१ जो सज्जन १०००) प्रतिवर्ष 'जन-ज्ञान' को देंगे वे इसके "संरक्षक सदस्य" होंगे। और उनका नाम प्रत्येक अंक में सादर प्रकाशित किया जाएगा।

२ जो २५०) प्रतिवर्ष देंगे, वे "विशिष्ट संचालक" सदस्य होंगे और। उनका नाम भी प्रत्येक अंक में सादर प्रकाशित किया जाएगा।

३ १००) वार्षिक देने वाले "संचालक सदस्य" होंगे।

४ ५१) वार्षिक देने वाले "सहायक सदस्य" होंगे।

५ १०) वार्षिक देने वाले साधारण सदस्य और १५१) एक साथ देने वाले आजीवन सदस्य होंगे।

महर्षि दयानन्द की महान् लक्ष्य पूर्ति के लिए 'जन-ज्ञान' कृत संकल्प है। जितना-जितना सहयोग मिलता रहेगा, उतना ही कार्य होता जाएगा। वेद-प्रचार के पवित्र यज्ञ में सभी का सहयोग मिलना ही चाहिए।

विनीत :

—भारतेन्द्र नाथ

संचालक
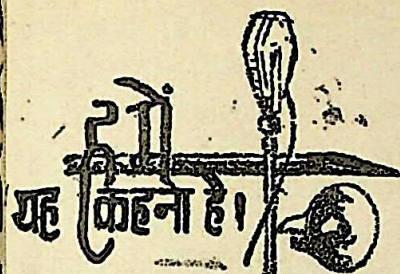
मैं कौन हूँ ?

तुम कौन हो ? इस प्रश्न का उत्तर क्या कभी एकान्त में आप ने सोचा ? क्या कभी किसी भी दिन आपने यह भी विचार किया कि आपको अपना सभी कुछ छोड़कर जाना भी होगा।

आप का यह प्यारा शरीर, जिसे सजाने के लिए आप का समस्त ज्ञान, बल, धन लगा हुआ है, एक दिन नहीं रहेगा। सब कुछ स्वाहा हो जाएगा।

तब क्या आप नष्ट हो जाएँगे, या सदा रहेंगे···यह प्रश्न है, ज्वलन्त तथा प्रत्यक्ष सत्य। किन्तु जानकर भी अनजान बना हमारा मन और मस्तिष्क इन प्रश्नों को भुलाना चाहता है।

हम व्यस्त हैं उस सब में जो यहीं छूट जाएगा, हमारे साथ नहीं जाएगा जो हमारा नहीं है, हो भी नहीं सकता उससे हमें प्यार है और अपने से······

पूछना, सोचना ही व्यर्थ है। अपने को भुलाकर ही तो हम जी रहे हैं। वस्तुतः आज धरती पर और सब कुछ पनप रहा है, यदि अभाव है तो सत्य का, मेरा, अपने को जानने का, आत्मज्ञान का।

सचमुच प्रभु का पुत्र मनुष्य, आज आत्म विस्मृति के अन्धकार में भटक कर आत्मघात कर रहा है। "शरीर-धर्म" का विज्ञान ही जीवन का सत्य बन विकसित है। परिणाम सर्वत्र प्रत्यक्ष है।

इस स्थिति में 'आत्मा' की बात करना आप को विचित्र लगता है। आप इस दिशा में सोच भी नहीं पा रहे क्योंकि आप के पास इसके लिए समय ही नहीं—आप इसका मूल्य नहीं जानते······

बस यही भटकाव है। महर्षि दयानन्द ने इस स्थिति का अनुभव कर अपने संपूर्ण ज्ञान और बल को लगाया था इसी भटकने की स्थिति को समाप्त करने के लिए। मनुष्य को मृत्यु-मार्ग से हटा जीवन की राह पर चलाने के लिए ही ऋषि ने आर्य समाज की स्थापना की थी।

हमारा निश्चित विश्वास है कि धरती पर केवल दो विचारधाराएँ हैं एक शरीर धर्म की एक 'आत्मा' धर्म की। शरीर के उपासक शरीर को ही सत्य समझ 'आत्मा' को न मानते हैं न जानते हैं और न वे जीवन को सुख-शान्ति आनन्द का अनुभव करा सकते हैं।

'आत्मा' को जान उसके कल्याण मार्ग का पथिक शरीर को साधन मानता है। वह शरीर को स्वस्थ-सुन्दर और सबल बनाता हुआ भी अपने को भुलाता नहीं और दुःख-कष्ट क्लेश कभी उसके पास फटक सकते नहीं।

यह दो मार्ग मनुष्य के लिए हैं। वह कर्म करने में स्वतन्त्र होने से अज्ञान के कारण क्षणिक सुख की चाह में जीवन के सत्य को विस्मृत कर बैठता है। ज्ञान की आवश्यकता मनुष्य को केवल इसीलिए है कि वह अपने को जाने, भुलाए नहीं। क्योंकि आत्म विस्मृति ही संसार के समस्त दुःखों का एकमात्र कारण है।

आर्य समाज का एकमात्र कार्य उस क्राँति का संचालन करना है जिसके द्वारा मनुष्य "शरीर धर्म" त्याग "आत्म-ज्ञान" का पथिक बने।

अपने गुरु देव दयानन्द के बोध दिवस पर आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य भाई और बहिन से हमारी यह प्रार्थना है कि वह गहराई से आत्म-निरीक्षण करें। सोचें तो सही कि वे जा कहाँ रहे हैं, उनकी मंजिल क्या थी और वे कहाँ चल पड़े ?

सर्वनाश की भट्टी में करोड़ों मनुष्यों का मन-मस्तिष्क आज झुलस रहा है। शाँति की खोज में अशान्ति का फल पाकर मनुष्य पागल बन पशुता की ओर बढ़ रहा है। भोग की चरमसीमा में तृप्ति का लक्ष्य उसे शैतान बना रहा है। उजड़ती-सुलगती यह धरती साक्षात् नरक बन गई है। क्या होगा''' भविष्य मनुष्य का, कुछ समझ नहीं आता।

ऐसे में क्या हमारा, जो ऋषि दयानन्द का नाम लेते हैं, उन्हें अपना

गुरु मानते हैं, कोई दायित्व है या नहीं ? सोचिए, और देखिए यह भी, अन्तर में झाँक कर, कि हम मार्ग से कितना भटक गए हैं ।

'वेद' प्रभु का ज्ञान, जो मनुष्य को मनुष्य बना सकता था, हमने भुला दिया । कितनी पीड़ा होती है इस हालत पर, पर दर्द सुनने, अनुभव करने वाला कौन है, किसे सुनाएं···?

फिर भी जो जाग रहे हैं, जिन्हें श्रद्धा-प्यार-आदर है महर्षि दयानन्द के पवित्र नाम से, उनके काम से, हम इस बोध दिवस पर उन्हें पुकारते हैं— और कहते हैं—

कुछ ऐसा करो कि—

दयानन्द की विजय पताका धरती पर लहराए ।
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए,
जितना भी अज्ञान तिमिर है, धरती से सारा बह जाए ।

उठो आर्यो ! उठो ! भाइयो और बहिनो ! उठो ! नींद खोलो और आत्म-निरीक्षण करो । भाषणों की बौछार-तालियों की गूँज, लुभावने प्रस्ताव दयानन्द को विजयी नहीं बना सकते । विजय के लिए बलिदान चाहिएं, खून चाहिए, सर्वस्व समर्पण की भावना चाहिए ।

सच्चे शिष्य लेखराम और श्रद्धानन्द ने अपने लहू से दयानन्द की विजय गाथा लिखी थी । आज फिर समय आ गया है कि सिर पर कफन बांध आर्य वीर और वीरांगनाएं दयानन्द का काम पूरा करने का व्रत लें ।

"पाखंड-खंडनी पताका" उठाने वाले हाथों में कम्पन आ गया······वेद ज्योति के प्रसारक अंधकार में घिरे हैं,क्या हो गया हमें, यह कैसा व्यामोह—

अरे ! आज बोध दिवस है । इस दिन बालक "मूल" को बोध हुआ था । हमें क्या बोध नहीं हो सकता ? हम अगर ऋषि दयानन्द के अनुयाई हैं; यदि हमारे शरीर में आर्य रक्त है, यदि हमें लाज है शहीदों के बलिदान की······

तो हम जागेंगे, अंगड़ाई लेकर उठेंगे और निकलेंगे विश्वविजय करने ।

हम उस दिन की कल्पना के लिए संघर्ष कर रहे हैं जब धरती पर मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाली कोई दीवार नहीं होगी । जब इन्सान को

शैतान बनाने वाले मजहबी ग्रंथों को काली कोठरी में बन्द कर दिया जाएगा। जब संसार का प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का पुत्र बन कर—आत्मा को अध्यात्म मार्ग का पथिक बनेगा।

उगता हुआ सूरज जब वेद का प्रकाश फैलाएगा। बहती हुई गंगा से जब ऋचाओं के स्वर गूंजेंगे। सारी धरती जब एक होगी जब सर्वत्र 'ओ३म्' पताका लहराएगी—तब हमारे गुरु दयानन्द को दिव्य स्वप्न पूरा होगा।

दयानन्द को गुरु मानने वालो दयानन्द का स्वप्न साकार करने के लिए जागो। संघर्ष करो! हमारे साथ आओ।

धन्यवाद

इच्छा थी कि शिवरात्रि पर स्व. शाँत स्वामी अनुभवानन्द जी सरस्वती कृत ४०० वेद मंत्रों की व्याख्या प्रस्तुत की जाए। इस इच्छा की पूर्ति में सहयोगी बने, श्री पं. इन्द्रदेव जी, आपने अपने संग्रह में से यह पुस्तक हमें प्रकाशनार्थ दी, हम उनके आभारी हैं।

पुस्तक की साज-सज्जा और प्रचार के लिए आर्य समाज के यशस्वी उदारमना चौ० प्रतापसिंह जी ने सहयोग दिया, वस्तुतः उनका सहयोग और आशीर्वाद तो आरम्भ से ही 'जन-ज्ञान' पर बना है। 'जन-ज्ञान' उनका कृतज्ञ है।

शुद्ध प्रकाशन व सम्पादन में आर्य विद्वान् व विचारक ब्र. जगदीश विद्यार्थी का अमूल्य सहयोग मिला। आर्य समाजों ने उत्साह से मंगा कर हमारा उत्साह बढ़ाया। हम सभी के प्रति हृदय से नतमस्तक हैं।

मंजिल अभी बहुत दूर है। अर्थाभाव से चाहकर भी जैसा चाहते थे वैसा प्रकाशन इसका न हो पाया, इसका हमें खेद है। फिर भी यदि हमारे इस प्रकाशन से ५-७ व्यक्तियों के हृदय में भी 'वेद' के प्रति श्रद्धा और प्यार का अंकुर उत्पन्न हो सका, तो हम समझेंगे कि श्रम सफल हुआ।

'वेद' के सौरभ को धरती पर बखेरने के लिए जिस तप-त्याग और अध्यवसाय की आवश्यकता है। हे प्रभु! हमें वह सामर्थ्य प्रदान करो कि अज्ञान तिमिर समाप्त कर हम आपकी ज्योति की किरणें भू मंडल पर फैला सकें—

शिवरात्रि पर साहित्य बाँटें

प्रत्येक आर्य का यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह अपने गुरु महर्षि दयानन्द के जन्म दिवस पर जैसे भी हो वैदिक साहित्य अपरिचित व्यक्तियों में वितरित करे।

थोड़ा बांटिए या अधिक यह तो आप की शक्ति और भावना पर निर्भर है किन्तु इतना तो आवश्वक है कि बांटें अवश्य।

'बोध-दिवस' पर जन-जन को जगाने के लिए आपको कुछ न कुछ अवश्य ही करना चाहिए। —भारतेन्द्रनाथ

जनज्ञानम्!

राकेशो भारतेन्द्रश्च सम्पादक निरीक्षकौ।
यस्य पत्रस्य तत्पत्रं जनज्ञानं सदा जयेत्।
वेदज्ञानं च विज्ञानं लोकज्ञानं तथैव च।
आत्मज्ञानं च जीवेभ्यः जन ज्ञानं ददाति वै॥
अधुना राष्ट्र भाषायां सन्ति पत्राण्यनेकशः।
तेषु श्रेष्ठतमं मन्ये जनज्ञानम् हि सर्वदा॥
सदा विश्वविश्वस्य कल्याणरूपं
सदा वेदविद्यानिधानस्वरूपम्।
जयं जीवनं जागृति प्राप्नुयात्सः
पठेद्यो हि नित्यं जन ज्ञानपत्रम्॥

—स्वामी श्रवण गिरि

"जनज्ञान" (मासिक) के प्रति

वैदिक विवेक से विभूषित विशुद्ध अति
नयनाभिराम, मनोहारी मणि माला है।
आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक व सामयिक—
—सुप्रसंग संयत विनोद व्यंग वाला है॥
सत्य के समर्थन असत अघ-वन-खण्ड
भस्म सात करने के हेतु चण्ड ज्वाला है,
श्रीमती 'राकेशरानी' 'भारतेन्द्रनाथ' धन्य
'जनज्ञान' आपने निराला ही निकाला है॥

—प्रकाशचन्द्र कविरत्न अजमेर

हम क्या कर रहे हैं ?

"जन-ज्ञान" मासिक ने

अपने प्रथम वर्ष में ४ विशेषांक भेंट किए

१—श्रद्धांजलि अंक
२—अध्यात्म अंक
३—ऋषि जीवन
४—क्रांतिकारी दयानन्द

जिनका मूल्य था ४) ७५ पैसे। वार्षिक शुल्क लिया ६)।

द्वितीय वर्ष में ५ विशेषांक भेंट किए

१—मां गायत्री
२—वेद-ज्योति
३—वैदिक गीता
४—वैदिक अध्यात्म ज्योति
५—योग रहस्य (अप्रैल १९७० का अंक)

जिनका मूल्य था ९) ७५ पैसे। वार्षिक शुल्क लिया ८) और १०)

इनके अतिरिक्त ईसाई निरोध के ग्यारह ट्रैक्ट लाखों की संख्या में छापे व बाँटे।

वैदिक विचारधारा प्रसार के लिए ३२ पुस्तकें हजारों की संख्या में बांटीं।

हमारे पास धन न था न है केवल प्रभु के भरोसे और आर्य जनता के आशीर्वाद से जो कार्य किया वह प्रत्यक्ष है।

हम योजनाओं में नहीं, कार्य में विश्वास रखते हैं

हमारा कार्य देख कर जिन्हें हमारी कार्यक्षमता और भावना पर विश्वास हो

हम केवल उन्हीं ऋषि भक्तों के सम्मुख भिक्षापात्र लेकर उपस्थित हैं आप जितना देंगे, हम उतना कार्य करते जाएंगे।

आशीर्वाद भी दीजिए और स्नेह भी

अनेक महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशन के लिए आप के सहयोग की राह देख रहे हैं

—राकेश रानी
सम्पादक

आज शिवरात्रि है

यह ऐतिहासिक दिन हमारे गुरु नवयुग
प्रवर्तक महर्षि दयानन्द का

बोध-दिवस है

अतः जिन्हें भी महर्षि दयानन्द से
तनिक भी प्यार और श्रद्धा हो

वे संकल्प लें

कि

हम अपनी पूर्ण शक्ति से अपने गुरुदेव
दयानन्द का कार्य पूरा करेंगे।

और

इस महान् कार्य को पूरा करने के लिए शिवरात्रि के
दिन जैसे भी हो वेद प्रचार के पवित्र यज्ञ में
अपनी आहुति भेजिए

१) भेजें या १०००) भेजें पर अवश्य

आपका सहयोग ही वेद-संदेश फैला सकेगा।

—भारतेन्द्र नाथ

जन-ज्ञान के स्वामित्व आदि का विवरण

फार्म ४ (देखो नियम ८)

१—प्रकाशन स्थान	दिल्ली
२—प्रकाशन अवधि क्रम	प्रतिमास
३—मुद्रक का नाम	राकेश रानी
राष्ट्रीयता—	भारतीय
पता	1597 हरध्यानसिंह रोड, करौल बाग, नई दिल्ली-5
४—प्रकाशक का नाम	,, ,,
राष्ट्रीयता—	
पता	
५—सम्पादक का नाम	,, ,,
राष्ट्रीयता	
पता	
६—उन शेयर होल्डरों के नाम और पते जिनके पास कुल पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक शेयर हैं।	जन-ज्ञान-प्रकाशन नई दिल्ली

मैं राकेशरानी घोषित करती हूँ कि ऊपर दिया हुआ विवरण सत्य है

राकेश रानी
प्रकाशक

वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है। क्या आप इस धर्म का पालन करते हैं ?

—सम्पादक

अध्यात्म मार्ग का पहला पाठ

मानव जीवन की धर्म-वेदि पर सबसे ऊँचा आसन परमेश्वर का है। धर्म-जीवन की वेदि पर यदि परमेश्वर के लिए कोई स्थान नहीं है, तो वह धर्म वेदी निष्फल ही नहीं, व्यर्थ भी है। धर्मवाद के मन्दिर निर्माण में सबसे पहली आधार शिला परमात्मवाद के नाम से ही रखी जाती है। परमात्मा का अस्तित्व स्वीकार किये विना न तो कोई धर्मवाद स्वयं ही उन्नत हो सकता है और न मानव जीवन को ही उन्नत मार्ग की ओर लाने में समर्थ हो सकता है। सच तो यह है कि परमेश्वर का अस्तित्व स्वीकार न करना और धर्मवाद को कल्पना मात्र वतलाना—दोनों बातें एक ही हैं, दोनों एक दूसरी का अनुवाद मात्र हैं। मनुष्य जीवन की सन्मार्ग प्रवृत्ति ही तव हो सकती है, जबकि मनुष्य को यह पूर्ण विश्वास हो जाय कि, इस मार्ग—इस यात्रा का अन्तिम स्थान वर्तमान स्थान से कहीं उत्कृष्ट, उत्तम और उन्नत है। प्रवृत्ति तत्व को सफल करने के लिए अपेक्षाकृत उत्कृष्ट, उन्नत एवं उत्तम तत्त्व की आवश्यकता है—अन्यथा प्रवृत्ति तत्व सुतरां निष्फल और आवश्यक है।

कोई भी मनुष्य अपनी वर्तमान अवस्था पर सन्तोष नहीं कर सकता। प्रत्येक मनुष्य अपनी वर्तमान अवस्था से निकलना और आगे बढ़ना चाहता है—वह क्रमशः आगे बढ़ता हुआ उन्नति के किसी ऐसे अन्तिम शिखर पर पहुँचना चाहता है, जिस पर पहुँचने के लिए उसकी कल्पना शक्ति उसे प्रेरित करती रहती है। मानव कल्पना और मानव प्रगति के इसी उन्नत एवं अन्तिम ध्येय को वैदिक भाषा में परमपद कहा जाता है, जैसा कि निम्न मन्त्र में वर्णित है—

> यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
> कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधिन्द्रायेन्दो परि स्रव॥
>
> ऋ० ९, ११३, ११

"जहाँ सुख और शान्ति का साम्राज्य हो जहाँ सुख एवं आनन्द अपने आप ही चरितार्थ हो रहे हों, जहाँ मनुष्य की सारी कामनायें पूर्ण होती हैं और जहाँ कामनायें स्वयं अपने अन्तिम लक्ष्य में समा जाती हों, अय मेरे स्वामिन ! उन्नति के उसी शिखर पर मुझे अमर कर दो। अय आनन्द को चरितार्थ करने वाले ! उसी परमानन्द के लिए मुझ पर द्रवित हो जाओ।"

मनोविज्ञान का अनुशीलन करने से पता लगता है कि मानव मन की प्रवृत्ति दो मार्गों—भागों—का अनुसरण करती हुई अपनी यात्रा पूर्ण करती है और इसीलिए यह दो तरह की समझी जाती है। बाह्यमुखी और अन्तर्मुखी। मन की बाह्यमुखी प्रवृत्ति अपनी सम्पूर्ण शक्ति-धाराओं का उपयोग करती हुई क्रम विकास द्वारा प्रकृति के स्थूल पदार्थ-तत्वों का अवगाहन एवं अनुसन्धान करती है और अन्त में सूक्ष्मतम तत्वों तक पहुँच कर प्रतिक्रिया (Reaction) के रूप में वापिस लौटती है। इसकी अन्तिम पहुँच तथा परिणाम प्रकृति एवं वैज्ञानिक उन्नति की चरम सीमा है। अन्तर्मुखी प्रवृत्ति अपनी सम्पूर्ण शक्ति धाराओं का प्रयोग करती हुई क्रमविकास द्वारा अपने से सूक्ष्म आत्म तत्व का अनुसन्धान करती हुई परम सूक्ष्म परमात्मतत्व तक पहुँच उसी में लीन हो जाती है। इसकी अन्तिम पहुँच परमात्मतत्व और अन्तिम परिणाम परमपद है, जिसका वर्णन ऊपर के मन्त्र में किया गया है।

मनुष्य चाहे किसी भी देश, जाति अथवा समाज से क्यों न सम्बन्ध रखता हो, अपने जीवन को, चरितार्थ या सफल करने के लिए उसके पास दो ही साधन हैं, जो प्रकृति पुरुष ने उसे दे रखे हैं, अर्थात् ज्ञान और कर्म। इस विषय में नास्तिक अथवा आस्तिक का कोई प्रश्न नहीं है। दोनों ही इन दोनों को रखते हैं, दोनों ही दोनों से काम लेते हैं और दोनों ही दोनों को सर्व सम्मत मानते हैं। इन दोनों के विषय में वेद बतलाता है कि—

ऋषी बोध प्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ।।

अथर्व० ५, ३०, १०

"ऐ मनुष्य ! तेरे जीवन में बोध और प्रतिबोध नाम के दो ऋषि नियत किए गए हैं, इनमें से प्रत्येक अपने अपने कार्य क्षेत्र में निरालसी और सजग हैं। तुम्हें ध्यान रखना चाहिए कि ये दोनों ही तुम्हारे प्राण जीवन की रक्षा करने वाले हों और दोनों ही दिन-रात सजग रहने वाले हों।"

पाठकों को यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि इन दोनों की एकता, एकतानता, एकरूपता और एक दूसरे की सहायता ही हमारे जीवन को सफल और चरितार्थ कर सकती है, और दोनों का विच्छेद ही हमारे जीवन का होना, न होना बराबर कर सकता है। आँख ज्ञानेन्द्रिय है और पैर कर्मेन्द्रिय, हम में से कोई मनुष्य यदि आँखें बन्द कर के यात्रा करना चाहे तो केन्द्र चक्र की भाँति अपने ही चारों ओर घूमना होगा और यदि पैर बाँध कर केवल आँखों से यात्रा करना चाहे, तब भी चक्रजाल के भीतर भीतर अपने ही चारों ओर देखना होगा। दोनों दशाओं में अपनी सीमा से बाहर जाना असम्भव है। कम से कम दूसरे की सहायता के बिना अपने आप जाना सचमुच असम्भव है।

आत्मा की चित्-शक्ति ही उसका सर्वस्व है और इसका क्रमशः विकास ही उसकी लोक-परलोक, इह जीवन, पर जीवन, अभ्युदय-निःश्रेयस और सांसारिक-पारमार्थिक उन्नति की चरम सीमा तक सफल यात्रा करने में सहायक हैं। चित्त एवं मन की जिन ज्ञान वृत्तियों द्वारा आत्मा की उक्त शक्तियाँ का विकास होता है, उन में से पहली वृत्ति का नाम ही वैदिक साहित्य में 'स्तुति' है। स्तुति का अर्थ वस्तु तत्व का यथार्थ ज्ञान है और यही ज्ञान आत्म-शक्तियों के विकास में सबसे पहला कार्य है। 'ज्ञान' कर्म के अधीन नहीं वरन् कर्म ही ज्ञान के अनुचर रूप से कार्य किया करता है। इसमें सन्देह नहीं कि, ज्ञान और कर्म दोनों ही एक दूसरे की सहायता पर अवलम्बित हैं, दोनों ही एक दूसरे को जन्म देने वाले हैं और दोनों ही एक दूसरे के जीवन सर्वस्व हैं; पर फिर भी ज्ञान वृत्ति को मुख्य माना जाता है इसका कारण यही है कि कर्म वृत्ति की अपेक्षा ज्ञान वृत्ति का विकास आत्मा की चित्-शक्ति से मुख्य सम्बन्ध रखता है और कर्म वृत्ति का विकास गौण अथवा परम्परा क्रम से। सच तो यह है कि प्राणिमात्र के पास ज्ञानेन्द्रियें

प्रत्येक पदार्थ के जानने-पहचानने समझने का साधन हैं और कर्मेन्द्रियाँ उन पदार्थों में से अनुकूल के प्राप्त करने एवं प्रतिकूल के दूर रखने का साधन हैं। इनमें से ज्ञानेन्द्रियों का सदुपयोग ही 'स्तुति' है और कर्मेन्द्रियों का अन्तिम उपयोग ही वैदिक साहित्य में "उपासना" है।

आत्मा की चिति शक्ति के विकास में पहला दरजा 'स्तुति' का है। ज्ञान-वृत्तियों का ठीक-ठीक लक्ष्य-वेधन ही दूसरे शब्दों में "स्तुति" कहाता है। मेरे सामने तीन मनुष्य खड़े हैं, इनमें से मैं एक को पिता, दूसरे को भाई और तीसरे को पुत्र अथवा शिष्य समझता या मानता हूँ। इसका कारण मेरी ज्ञान वृत्ति का सदुपयोग, यथार्थ लक्ष्यवेध अथवा स्तुति वृत्ति की कार्य सफलता ही है। यह ठीक है कि 'पिता, भाई और पुत्र आदि शब्द मेरे ही नियत किये हुए हैं; किन्तु जिस वस्तु के लिए जो शब्द नियत है, चाहे फिर वह किसी के द्वारा ही क्यों न नियत किया गया हो। उसका पूर्ण सहयोग ही ज्ञान-वृत्ति का यथार्थ उपयोग है और इसी उपयोग का वैदिक नाम 'स्तुति' है। सारांश यह कि किसी भी वस्तु तत्व को ठीक पहचानने के लिए किन्हीं ऐसे गुण धर्मों का पाया जाना "स्तुति" कहलाता है, कि जो पूर्ण रूप से किसी दूसरे वस्तु तत्व में न पाये जाते हों।

यह बात गलत है कि परमेश्वर को छोड़ कर और किसी चीज की उपासना की ही नहीं जाती या की ही नहीं जानी चाहिए। क्योंकि प्रत्येक प्राणी प्रत्येक अनुकूल पदार्थ की उपासना करता पाया देखा जाता है, ऐसा होना भी चाहिये और ऐसा हुए बिना न तो किसी प्राणी का जीवन-उपयोग ही हो सकता है और ना ही उपासना वृत्ति चरितार्थ हो सकती है। हाँ, यह बात विश्वास पूर्वक ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस प्रकार ज्ञान वृत्ति प्रत्येक पदार्थ में प्रवेश करती हुई परमतत्व परमेश्वर में पहुँच कर चरितार्थ होती है, इसी प्रकार उपासना-वृत्ति (प्राप्ति-समीपता अथवा साक्षात्कार) भी सब पदार्थों में अनुगमन करती हुई परम पद स्वरूप परमात्मा में पहुँच कर ही चरितार्थ तथा समाप्त होती है।

इतने मात्र से पाठकों को यह न समझ लेना चाहिए कि परमेश्वर से अतिरिक्त किसी जड़ वस्तु की तदाकार वृत्ति से उपासना करना भी ठीक

सिद्ध हो जाता है; क्योंकि "उपासना" शब्द का अर्थ जहाँ तक प्राप्ति अथवा समीपता है, वहीं तक जड़ पदार्थों में चरितार्थ है; किन्तु जहाँ इस शब्द का अर्थ समीपता से निकल कर परम तत्व का साक्षात्कार अथवा सायुज्यभाव है, वहाँ इसका अर्थ परम तत्व परमेश्वर के विना दूसरा नहीं किया जा सकता। ज्ञान-वृत्ति का व्यापक भाव पदार्थ मात्रक ज्ञान प्राप्त करते हुए परम ज्ञान में चरितार्थ हो जाना है और उपासना-वृत्ति का व्यापक भाव पदार्थ मात्र की समीपता प्राप्त करते हुए परम तत्व की प्राप्ति में चरितार्थ होना है।

एक तीसरी वृत्ति इन दोनों के बीच में रेखा रूप से काम करती हुई इन दोनों को मिलाती है और वह 'प्रार्थना वृत्ति' है। प्रार्थना वृत्ति के विना उक्त दोनों वृत्तियों की एकता, एकरूपता, एकतानता नहीं होती और ऐसा हुये विना दोनों वृत्तियों का सदुपयोग होकर सत्परिणाम नहीं हो सकता। प्रार्थना वृत्ति वस्तुत: इच्छा शक्ति का पूर्ण विकास है जो ज्ञानवृत्ति द्वारा सत्यासत्य का निश्चय होने के उपरान्त मनुष्यों को सत्य, शुभ तथा अनुकूल परिणाम के लिये उपासना वृत्ति की ओर प्रेरित करता है। मेरी यह भारी भूल होगी, यदि मैं भिखारी बन कर परमेश्वर अथवा किसी मनुष्य से कुछ माँग लेने को ही 'प्रार्थना' समझने लगूँगा। भिखारीपन प्रार्थना-वृत्ति का सबसे निचले दरजे का उपयोग है, जो एक कंगला मनुष्य कर सकता है। जिन लोगों ने मनोविज्ञान (Psychology) का मनन और अभ्यास किया है, वे इस बात को पूरी तरह से मानते हैं कि विवेक-ज्ञान-पूर्वक विकास पाई हुई इच्छा शक्ति की गतियें, धारायें, उपासना वृत्ति में प्रवेश करके ऐसे ही सफल होती हैं जैसे एक यात्री ज्ञान पूर्वक यात्रा करता हुआ उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचने में सफल होता है अथवा जैसे नेत्र खोल कर ध्यान पूर्वक चलने वाला मनुष्य मार्ग देखने में सफल होता है। खुले और स्पष्ट शब्दों में इच्छा शक्ति के क्रम विकास का नाम ही 'प्रार्थना' है।

प्रार्थना वृत्ति की काल विभागों में से 'वर्तमान' काल से उपमा दी जा सकती है। वर्तमान काल अपनी कुछ भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखता। उसका एक एक क्षण या तो भविष्य के गर्भ में है या भूतकाल के गढ़े में, किन्तु फिर

भी उसका बड़ा महत्व है। वही दोनों को विभक्त करने वाला है, वही दोनों का नाम रखने वाला है और वही दोनों का मूल्य बताने वाला है। वह मानों दोनों मणियों के बीच में एक सूत्र है, जो दोनों को पिरोता, एक को दूसरे से मिलाता और अगले को पिछले में चरितार्थ करता है। ठीक इसी प्रकार प्रार्थना-वृत्ति भी ज्ञान और ज्ञेय (उपासना वृत्ति का प्रकृत केन्द्र ही ज्ञेय है) को विभक्त करने वाली है और वही दोनों को एक ही जीवन सूत्र में पिरो कर एक दूसरे को एक दूसरे में चरितार्थ करने वाली है। जो इच्छा शक्ति मुझे किसी वस्तुतत्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रेरित करती है, वही इच्छा शक्ति उसके पाने के लिये भी प्रोत्साहन देती है। जो इच्छा वृत्ति मुझे लोक साधन के लिये प्रेरित करती है, वही परलोक के लिये भी उत्साहित करती है।

यह एक निर्विवाद बात है कि भिन्न-भिन्न मनुष्यों की इच्छा शक्ति में भारी विषमता होती है और यह विषमता स्वाभाविक मानी जाती है। भिन्न भिन्न मनुष्यों की इच्छा शक्ति में समानता नहीं होती और न हो सकती है, क्योंकि इच्छा शक्तियों का क्रम विकास मानसगति के क्रम विकास पर निर्भर है और मनोवेग में विषमता स्वाभाविक पाई जाती है। इस मानसविषमता के विषय में वेद का कथन है कि—

> अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
> आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ।।
>
> ऋ० १०-७१-७

"आंख और कान आदि इन्द्रियों के समान होते हुए भी मानव मण्डल मनोवेगों में समान नहीं पैदा हुआ। इनमें से कुछ तो घरेलू तलाबों की भाँति बहुत ही ओछे एवं संकुचित होते हैं और कुछ अथाह सागर की भाँति इतने गम्भीर होते हैं कि उनके द्वारा अनेकों जीवन मानो स्नान करते हुए पवित्र एवं निर्मल हो सकते हैं।"

यह विषमता केवल मानस तत्व में ही नहीं—बुद्धितत्व में भी पाई जाती है। इसीलिये वेद में आत्म सम्बोधन के तरीके से कहा गया है कि :—

असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्रे सोमपा अपसा सन्तु नेमे।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥

ऋ० १—५४—८

"हे इन्द्रात्मन् ! सारे मनुष्यों का बल समान नहीं और बुद्धि भी समान नहीं; किन्तु ये अपने कर्म जीवन से ही जीवन की रक्षा—उन्नति—करने वाले होते हैं। इनमें से जो लाग ध्यान-विचार-पूर्वक तेरा बल (आत्मबल) बढ़ाते हैं, उन्हीं के लिये महान् बल, पूर्ण दृढ़ता और वीरभाव कहा गया है।"

मन का अस्तित्व वेद में इस प्रकार वर्णित किया गया है।

ध्रुवं ज्योतिर्निहितंदृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥

ऋ० ६—९—५

"हृदय प्रदेश में सुख-शांति का अनुभव करने के लिये जो एक निश्चित ज्योति है, वही भारी वेगवाला मन है, जो भीतर प्रगतिशील रहता है। सम्पूर्ण इन्द्रिय देव इसकी सहयोगिता एवं सजगता के साथ ही अकेले जीवन यज्ञ को सफल बनाने में क्रिया शील रहते हैं"

इसी निश्चित मानस ज्योति के विषय में परमेश्वर से प्रार्थना की गई है कि :—

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा।
पाक्या चिद् वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥

ऋ० २—२७—११

"अय विद्या बुद्धि के उन्नत करने वाले गुरुजनो ! न तो दायीं ओर ही कुछ दिखाई देता है, न बाईं ओर, न आगे ही कुछ दीख पाता है और न पीछे। चारों ओर घोर अन्धकार व्याप रहा है; किन्तु चाहता हूं कि चाहे मैं कितना ही परिपक्व बुद्धि एवं धीर क्यों न होऊं—आपकी सहायता से प्रगति शील होता हुआ इस अन्तर्ज्योति—इस आत्म ज्योति में व्याप जाऊं और यह मुझ में व्याप जाये।"

वेदान्तियों का अद्वैतवाद-अभेदवाद चाहे कितना ही दूषित अथवा

अनुचित क्यों न हो; पर अद्वैतवाद अथवा अभेदवाद अपने आप में मिथ्या अथवा दूषित नहीं कहा जा सकता। विश्वास और व्यवहार की एकता ही जीवन भूमि में सफलता का बीज डालती है और इन दोनों में विरोध ही जीवन के विफल होने में कारण है। अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी जीवन को एक कर देना-मिला देना ही मानव जीवन का प्रयोजन बतलाया जाता है। जहां ये दोनों परस्पर एक रूप, एकतान, एवं अभिन्न हैं; वहीं जीवन शास्त्र की वास्तविकता पूर्णता, समता, अलौकिकता, उत्साह स्वर्गीय सौन्दर्य और पूर्ण प्रेम की प्रगति दिखाई दे सकती है। प्रबुद्ध शंकराचार्य के मनोमंदिर में सोने चाँदी के लिये कोई स्थान नहीं—उसकी विवेक शक्ति इस मायावाद से आगे निकल चुकी है। यात्रा करते हुए एक नदी के किनारे मोतियों का ढेर दिखाई देता है; जिस शंकर के ज्ञान में माया के लिये स्थान नहीं, उसके कर्म में भी उसके लिए कोई आदर नहीं। परिणाम यह है कि वह हीरों के ढेर पर मल-मूत्र विसर्जन करता है और आगे चला जाता है। शंकर से पहले न जाने कितने लोगों ने इस ढेर को 'प्यासी आँखों से देखा होगा; पर उसे देख कर जो भाव शंकर के हृदय में पैदा हुआ वह दूसरों में न हुआ और न हो सकता था।

महाराज शुद्धोदन का एक मात्र पुत्र—तीस वर्ष आयु का एक पूर्ण युवक 'सिद्धार्थ' अपने राजकुमार जीवन में रथ पर बैठा हुआ घूमने जा रहा था। सामने से कुछ लोग मृत शरीर को उठाये जा रहे थे। कुमार ने अपने सारथी से पूछा और यह मालूम होने पर कि, एक दिन सभी मरेंगे, निश्चय किया कि मौत से बचने का उपाय करना होगा। जीवन का लक्षण मालूम हुआ, मृत्यु से छूटने की इच्छा हुई, विश्वास और व्यवहार में एकता थी, घर छोड़ा, राज्य छोड़ा, पुत्र और पत्नी को छोड़ा, जंगलों का रास्ता लिया। राजकुमार से पहले न जाने कितने मनुष्यों ने मृत शरीरों को देखा और इस उत्तर को—एक दिन सब मरेंगे—सुना होगा; पर विश्वास और व्यवहार में एकता न थी, इसीलिये उनके जीवनों पर कोई प्रभाव भी न था।

महामान्य 'मूल शंकर' अपने पिता के साथ उपवास व्रत लिये शिव मन्दिर में 'रतजगा, कर रहा है। शिवलिंग पर पड़ी मिठाई खाने के लिये

चूहे अपना दाव पेंच कर रहे हैं। सबकी आँख बचाकर एक चूहा शिवलिंग पर चढ़ता है और मिठाई खाकर अपनी जन्म सिद्ध प्रवृत्ति के अनुसार ऊपर ही हगना—मूतना आरम्भ करता है। इस दृश्य को वंश परम्परा से सभी पुजारी देखते आये हैं, मूल शंकर से पहले और बाद में अनेकों ने देखा, पर मूल शंकर के जीवन में विश्वास और व्यवहार में विरोध नहीं था—एकता थी—पूर्ण एकता थी, इसलिए मन में सन्देह होता है, वही सन्देह मूल शंकर को दयानन्द में परिणत कर देता है।

संसार में कोई धर्म तत्व तब तक स्थिर-जीवित-नहीं रह सकता, जब तक कि वह, मनुष्य में इच्छा और कर्त्तव्य, विश्वास और व्यवहार अथवा विचार और आचार को एक ही नियत रेखा पर खड़ा नहीं कर देता। ये दोनों ही क्योंकि एक जाति के नहीं हैं, और इसीलिये एक मार्ग के अनुगामी भी नहीं। जब तक इच्छा कर्त्तव्य के रूप में विश्वास व्यवहार के रूप में, और विचार आचार के रूप में परिणत होकर एक दूसरे के लिये चरितार्थ नहीं होते, तब तक न तो धर्म तत्व का कोई आदर्श ही स्थिर हो सकता है और न उससे किसी सुफल की सम्भावना ही की जा सकती है। जिस समय मेरी इच्छायें कर्त्तव्य में परिणत हो जायेंगी, विश्वास व्यवहार का रूप धारण कर लेंगे और विचार आचार भी जीवन में विकसित हो उठेंगे; वह समय मेरे जीवन में पूर्ण सफलता का समय होगा, मैं धर्ममन्दिर में प्रवेश पाने का पूर्ण अधिकारी हो जाऊंगा और उसके पवित्र पुजारी होने का गौरव प्राप्त कर सकूंगा।

जब तक मुझे आत्म प्रगति का वह पद प्राप्त नहीं होता कि जिसमें, इच्छा और कर्त्तव्य एक हो जाते हैं, विश्वास और व्यवहार में अभेद हो जाता है; तथा विचार और आचार एक ही जीवन के दो साधन हो जाते हैं; तब तक धर्म-तत्व का वास्तविक स्वरूप कम से कम मेरी समझ में नहीं आ सकता—मेरे विश्वास के अनुसार किसी की भी समझ में नहीं आ सकता। मेरे मत में इन दोनों की एकता ही लोक और परलोक की एकता है, संसार और स्वर्ग की एकता है; जन्म और मरण की एकता है, तथा जीवन और धर्म की एकता है।

वेद का अविकल अनुशीलन करने से पता लगता है कि वेद ज्ञान सर्वांग रूप से प्रार्थनामय है। यहाँ तक कि जितने भी वैज्ञानिक तत्वों का वेद में वर्णन किया गया है, वह सब भी प्रार्थना रूप से ही किया गया है—वेद में ६० फीसदी मंत्र प्रार्थना रूप से उपदेश देने वाले हैं। इस का कोई निश्चित कारण होना चाहिये। यूरोपीय विद्वान् तो इतना ही समझ-कह कर सन्तुष्ट हो जाते या हो सकते हैं कि, वेदों का निर्माण काल प्राकृत अन्धकार से भरा हुआ है, इसी लिये वेदों में प्रत्येक अनूठे पदार्थ को सम्बोधन करके कुछ न कुछ प्रार्थना की गई है। अनेक भारतीय भी ऐसा ही मानते हैं और कहते हैं पर सभी ऐसा नहीं मानते और न मान सकते हैं। वेद मंत्रों को ध्यान पूर्वक पढ़ने से भी यह बात सर्वथा संगत नहीं जान पड़ती। अनेक मंत्र ऐसे हैं, जिन में अपने ही आप को सम्बोधन किया गया है, अनेक ऐसे हैं, जिन में मातृ शक्ति को सम्बोधन किया गया है, और अनेक मंत्रों में दूसरे प्रकार के सम्बोधन पाये जाते हैं। वेद-ज्ञान का सर्व भूत प्रार्थनामय होना कम से कम इतना अवश्य सिद्ध करता है कि इसका उद्देश्य परमेश्वर से या किसी से भी **केवल मांगना** नहीं है, वरन् जीवन के सभी अंगों-विभागों-को पूर्ण रूप से विकसित करना है और इच्छा शक्ति को यहाँ तक विकास देना है कि वह प्रत्येक उद्दिष्ट वस्तु तत्व के साथ तन्मय हो सके। इस बात का स्पष्ट वर्णन निम्न मंत्र में पाया जाता है :—

वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः॥

ऋ० १०-४७-७

सम्यग् भक्ति के रखने वाले मुझ भक्त के हृदय को स्पर्श करने वाली, सच्चे मन से उच्चारण की हुई और सुबुद्धि पूर्वक प्रेरित की हुई प्रार्थनायें मानो दूत बन कर परमेन्द्र देव तक विचरण करती हैं; हे परमेन्द्र देव ! हम सब को जीवन शक्ति दो, बल दो, पौरुष दो और जीवन धन दो।

यह मंत्र इन बातों पर प्रकाश डालता है :—

(क) प्रार्थनायें मानों हृदय का दूत हैं जो अभीष्ट सिद्धि का पता देते हुए इष्ट तक पहुंचने में सहायक होते हैं।

(ख) प्रार्थनायें सुबुद्धि द्वारा प्रेरित और मन द्वारा उच्चारित होनी चाहियें।

(ग) प्रार्थनायें दूसरे तक पहुंचने से पहले प्रार्थी के हृदय को स्पर्श करने वाली होनी चाहियें—उनका प्रभाव सबसे पहले करने वाले पर होना चाहिये।

(घ) प्रार्थना करने वाला भक्त "वनीवान्" अर्थात् पूर्ण भक्त, पूर्ण श्रद्धा वाला और विकसित मनस्वी होना चाहिये। वह भक्ति और भक्त वत्सल से विभक्त नहीं होना चाहिये।

(च) इन नियमों में प्रेरित की हुई प्रार्थनायें ही "विचित्र-बल" और "विचित्र रयि" के देने वाली होती हैं—न कि भिखारियों की भांति चाटुओं की क्रियायें।

इससे पाठक आसानी से समझ सकते हैं कि वेद का प्रार्थनामय होना भिखारी पन को नहीं—जीवन निर्माण की शिक्षा के लिये है, अर्थात् जीवन निर्माण का प्रत्येक भाव मेरे हृदय में उदय ही नहीं होना चाहिये—विकसित भी होना चाहिये। जो भाव मेरे हृदय में बैठा हो, उसी का मेरे जीवन में विकास होना चाहिये—मेरे जीवन का का प्रत्येक अंग उस भाव के साथ अभिन्न एवं तदाकार होना चाहिये।

पाठकों ने समझ लिया कि प्रार्थनावृत्ति का स्वरूप, बल, ध्येय और उद्देश क्या है, यह भी समझ लिया कि इसका हमारे जीवन से कितना घनिष्ट सम्बन्ध है; अब यह देखना है कि फल एवं परिणाम क्या है। प्रत्येक मनुष्य की जीवन यात्रा में प्रत्येक प्रकार की मूर्खता, दुर्गुण, अपराध, दोष और कमी उसके विरुद्ध आवाज उठाते रहते हैं। इन में से कोई भी ऐसा नहीं जो अपने परिणाम से मुझे या किसी भी मनुष्य को सूचित न करता हो—किसी न किसी रूप से धिक्कार न देता हो। अन्तर केवल इतना ही है कि बहिर्मुखी वृत्ति में तन्मय होने वाले लोग कम सुन पाते, समझ पाते हैं और दूसरे लोग आसानी से जान और सुन लेते हैं। ऐसे समय पर मनुष्य की शुभ इच्छायें, विमल भावनायें और निर्दोष प्रयत्न ही सहायक होते हैं—इन्हीं की सहायता से मनुष्य, जीवन निर्माण के मार्ग पर अग्रसर होता है। इन प्रयत्नों का जो प्रभाव बाहिरी जीवन को सुखी, शान्त अथवा उन्नत

करता है,वही प्रभाव अन्तर्जीवन को भी सुखी और शांत कर सकता है। आंधी पानी और तूफान के उपरांत दुर्दिन के मानो अन्त में जैसे निर्मल आकाश से सूर्य की उज्ज्वल ज्योति निकलने पर पृथ्वी मानों हँसने लग जाती है; ठीक ऐसे ही शुभ इच्छायें, विमल भावनायें और सजीव मनोबल से प्रेरित होने वाली पवित्र प्रार्थना के बाद दुर्दशा में पड़े हुए मानव हृदय की मरुस्थली भी मानो विकसित होती जान पड़ती है। मानसिक आकाश में माया का मोह जाल फैलने पर परम प्रभु की पवित्र प्रार्थना द्वारा पैदा की हुई विशुद्ध प्रेम की प्रकाश किरणें अधीर हृदय में भरने देने से स्पष्ट मालूम होने लगता है कि अन्धेरा, कुहासा और मायाजाल किसी वे मालूम दिशा की ओर भाग रहा है और उसका स्थान सुख, शान्ति, सन्तोष एवं आत्मा की जीवन शक्ति ले रही है।

मनुष्य की असली और पूरी कीमत का अनुमान उसके राष्ट्रीय सामाजिक अथवा पारिवारिक जीवन निर्माण से नहीं—वरन् उसके व्यक्तिगत जीवन निर्माण से ही ठीक २ किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। क्योंकि मानव जीवन के पूर्ण निर्माण में जिन शक्तियों का प्रयोग किया जाता है, उनमें सब से पहला दरजा आत्म शक्तियों का है, दूसरा दरजा मानसिक शक्तियों का और तीसरा दरजा शारीरिक शक्तियों का माना जाता है। आत्म जीवन का सद्विकास ही, मानस जीवन की पूर्णता का द्वार है, मानसिक जीवन की पूर्णता ही शारीरिक जीवन का द्वार है। ये दोनों और शारीरिक की पूर्णता-तीनों का सम्मिलित निर्माण ही व्यक्तिगत जीवन को पूर्ण एवं सर्वांग सुन्दर बनाता है और यही व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन का द्वार है; पारिवारिक जीवन ही सामाजिक जीवन की नींव रखता हैऔर सामाजिक जीवन से ही राष्ट्रीय जीवन का निर्माण हुआ करता है। आत्म जीवन का निर्माण आत्म शक्तियों के विकास पर निर्भर है जो उपासना द्वारा सिद्ध किया जाता है; शारीरिक जीवन का निर्माण शारीरिक शक्तियों के क्रमविकास से किया जाता है और मानसिक जीवन का निर्माण मानस शक्तियों, इच्छा शक्तियों अथवा भावना शक्तियों के पूर्ण विकास से किया जाता है; जिसका मुख्य द्वार "प्रार्थना—वृत्ति" है। व्यक्तिगत जीवन निर्माण

के कारण ही जीवन का कुछ महत्व समझा जा सकता है या समझा जाना चाहिए। जिसका एक २ क्षण समझने वाले के लिए भारी कीमत रखता है। वैदिक दृष्टि में भी मानव जीवन का महत्व कीमती माना जाता है, वेद भगवान् वतलाता है :—

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।

ऋ० १०-१८-४

"मैं मानव जीवन के लिए जो यह अवधि नियत करता हूं इसे जीवन कोष का सुरक्षित धन समझ कर व्यर्थ के पापों में नष्ट नहीं कर देना चाहिये"

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु।
यथा न पूर्वमपरो जहात्ये वा धातरायूंषि कल्पयैषाम्॥

ऋ० १०-१८-५

जिस तरह दिन एक दूसरे के पीछे आते-जाते रहते हैं, जिस तरह ऋतुयें अपने २ क्रम से आवागमन करती हैं, जिस तरह भूतकाल भविष्यत के समीप पहुँच कर स्वयं बीत जाता है; उसी तरह अय आयु के धारण करने वाले! जीवनों के आयु दिनों को भी समझो—इन्हें यों ही नष्ट मत होने दो।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममतं सुखं रथमथ जिर्विविदथमा वदासि॥

अथर्व० ८-१-६

हे मनुष्य! तेरी अवनति के लिये नहीं; किन्तु उन्नति और जीवन के लिए ही तुझ में अन्तः प्रवृत्ति एवं अन्तर्बुद्धि की रचना की गई है। इस दक्षता के अनुसार ही तुझे सुखमय तथा अमृतमय जीवन रूपी रथ पर सवार रहना चाहिए और विश्वास करना चाहिए कि हम सब सफल एवं सजीव जीवन के लिये ही जीवन—यज्ञ अथवा जीवन—संग्राम की व्यवस्था में प्रवृत्त हुए हैं। वैदिक आदर्श के अनुसार व्यक्ति समाज से और समाज व्यक्ति से भिन्न किसी वस्तु का नाम नहीं है, व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र आदि सब एक दूसरे की सहायता से बनते हैं और एक दूसरे से जीवन पाकर ही जीवित रहते हैं। जो लोग व्यक्ति और समाज को जुदा २ रख कर सामाजिक

अथवा राष्ट्रीय प्रगति में आगे बढ़ना चाहते हैं, उन्हें आज नहीं कल, कल नहीं परसों फेल होना होगा—विफल होना होगा और हज़ार ठोकरें खाकर फि उसी केन्द्र पर आना होगा, जहाँ से कि चलना आरम्भ किया था।

पाठक ! सोचिये, जिस मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन वासनामय, पापमय मलिन, क्षीण और दीन हो रहा है, वह परिवार, समाज अथवा राष्ट्र में क्या काम कर सकता है और उसे क्या सफलता हो सकती है ? मैं मानता हूं और सच्चे हृदय से मानता हूं कि, कोरा धर्मवाद, कोरा ध्यानयोग, और अकेला व्यक्तिगत जीवन किसी समाज अथवा राष्ट्र की प्रगति में कोई सफलता प्राप्त नहीं कर सकता ; किन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि एक व्यक्तिगत जीवन की कोई परवाह न करने वाला, उसे छल कपट आदि से पाप मय बनाने वाला जीवन हीन मनुष्य कोरे एवं सार हीन व्याख्यान झाड़ कर ही समाज अथवा राष्ट्र में कोई प्रगति पैदा कर सकता है। मेरे विश्वासानुसार कोरा तर्कवाद और कोरा व्याख्यान विप्लव आरम्भ में ही नास्तिकता का प्रचारक होता है और कोरा आचार वाद या कोरा अन्ध विश्वास आरम्भ में चाहे न सही ; पर अन्त में यह भी नास्तिकता में पहुंच कर समा जाता है। व्यक्तिगत जीवन निर्माण के आरम्भ में तर्कवाद-विचार वाद-के द्वारा आदर्श को सर्वांग समझने की आवश्यकता है और समझ लेने के उपरान्त आचार जीवन द्वारा उसे सजीव करने की जरूरत है। ये दोनों ही व्यक्तिगत जीवन निर्माण के अनिवार्य साधन हैं और दोनों ही एक दूसरे की सहायता से एक दूसरे के साथ मिल कर सफल तथा चरितार्थ होते हैं।

"प्रार्थना—वृत्ति" जीवन की इन दोनों धाराओं को परस्पर मिलाती हुई आत्मा को परमात्मा की ओर प्रेरित करती है। इस प्रार्थना वृत्ति को सर्वांग पूर्ण और सुन्दर रखने तथा सफल और चरितार्थ करने के लिये दो नियमों की आवश्यकता है—यही दो नियम ऐसे हैं कि जिनके बिना हमारी प्रार्थनायें सफल और चरितार्थ नहीं होतीं :—

१ काल नियम और २ आत्म परीक्षण।

हमारी प्रार्थनाओं के लिये कोई समय नियत नहीं होता, हम जब तब प्रार्थना करने लग जाते हैं, हम दुःख एवं कष्ट के समय पर प्रार्थना वृत्ति से

खूब काम लेते हैं ; पर सुख शान्ति के समय इसकी ओर ध्यान नहीं देते, हमारी प्रार्थनाओं का अधिक भाग या तो दिखाने के लिए होता है अथवा भगवान् से भीख मांगने के लिये। इत्यादि अनेक मन्द प्रवृत्तियें ही प्रार्थना वृत्ति के पूर्ण और उन्नत होने में बाधक हैं। पीछे लिखा जा चुका है कि इच्छा शक्ति का पूर्ण विकास ही प्रार्थना वृत्ति की सफलता है। जिस तरह सोने, जागने, काम करने, खाने, पीने और दूसरे कामों के लिये नियत समय, नियम औरव्यवस्था की आवश्यकता होती है,उसी तरह प्रार्थना-वृत्ति को सफल करने-इच्छा शक्ति को विकसित करने के लिये भी नियत समय की आवश्यकता होती है। अनियमित भोजन करने वाले की पाचन क्रिया विकृत हो जाती है। अनियमित सोने वाले का सचेत स्नायु जाल विकृत हो जाता है, अनियमित ज्ञानेन्द्रियों से काम लेने वाला ही बावला होता है; इसी तरह अनियमित प्रार्थना करने वाला भी इच्छा शक्तियों के विकास में विफल होता है। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिये निम्न वेद मंत्र का अनुशीलन बहुत ही उपयुक्त प्रतीत होता है :—

उत प्रहामति दीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले।
यो देवकामो न धना रुणाद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान्॥

ऋ० १०-४२-९

बढ़ी हुई इच्छा शक्ति के द्वारा प्रत्येक वीरात्मा समस्त बाधाओं पर विजय पाता है, बुरी प्रवृत्तियों का नाश करने वाला वही वीर—जो उचित एवं नियत समय पर सद्भावनाओं तथा सत्कर्मों का संग्रह करता है—इच्छाशक्ति से विजयी होता है। दिव्यभावनाओं को उत्तेजित करने वाला, महत्वाकांक्षी एवं अपनी धारणाओं का स्वामी मनुष्य अपने इस धन को अपने ही लिए नष्ट नहीं कर देता, वरन् वह उसे जीवन धन और धर्म धन के साथ मिला कर और भी उन्नत करता है।"

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः॥

अथर्व १९-५३-७

समय पर ही मन को और समय पर ही प्राणों को समाहित किया जा

सकता है। आने वाले समय के उचित उपयोग से ही मानव-प्रजा सुखी, शां
एवं आनन्दित रह सकती है।"

दूसरा नियम "आत्म परीक्षण" है। इच्छा शक्ति अथवा मनोभावन
से काम लेने का एक मात्र उपाय एकांत विचार और उसका सद्विकास है

हमने अपनी इच्छा शक्ति को विकसित कर लिया है या नहीं, हमार
प्रार्थना में सजीवता आ गई है या नहीं; हमारी भावनायें पूर्णरूप से उत्तेजि
एवं जागृत हो गई हैं या नहीं, इन प्रश्नों का उत्तर हमें एक ही उपाय से मिल
सकता है और वह उपाय आत्म परीक्षण है। हमें परमेश्वर ने दो आँखें औ
दो ही कान भी दिये हैं। हम इन दोनों से दूसरों की परीक्षा करने में भी
सिद्ध हस्त हो गये हैं। काश! हम अपनी दोनों आंखों से दूसरों के दोष देखने
के व्यसनी न बन कर अपनी परीक्षा करने के व्यसनी होते तो, हमारा बहुत
कुछ भला हो जाता। जो लोग दूसरों को सुधारने में अपने समय के २३ घंटे
और ६० मिनट लगा देने के व्यसनी हो गये हैं, वे आत्म परीक्षण न करने
से अपने में दोष भी नहीं देख सकते और इसी लिये अपना सुधार भी नहीं कर
सकते। इस में सन्देह नहीं कि आत्म-सुधार—केवल अपना ही सुधार—परले
दरजे का स्वार्थवाद है, किन्तु, अपनी ओर कुछ भी ध्यान न देकर, केवल
दूसरों के पीछे लाठी लिये फिरना भी सुधारवाद का परले दर्जे का दुरुपयोग
है और यही पर-दोष दर्शन का पहला पाठ है। अस्तु। आत्म परीक्षण के
लिये हमें कोई ऐसा क्रम रखना चाहिये—कोई ऐसी सारणी रखनी
चाहिये कि जिससे, हमारी प्रार्थनायें रवि प्रार्थनायें (Sunday Prayers)
बहिर्मुखी प्रार्थनायें और दिखावे की प्रार्थनाओं के ढोंग में न रह कर अपने
भीतर प्रवेश करने में सफल हो सकें। हमारे जीवन में, हमारे धर्म जीवन में
और हमारे कामों में जो यह ढोंग प्रवेश पा गया हैं, उससे छुटकारा पाये
बिना हम अन्तर्मुखी स्थिति को समझ ही नहीं सकते और न उस पर अपने
को अधिकृत ही कर सकते हैं। प्रार्थना के वास्तविक मनो मन्दिर में प्रवेश
करने के बाद हम प्रति दिन की प्रगति के विषय में जो कुछ भी प्रयत्न करेंगे
उसकी स्मृति रखेंगे; उसके अनुसार एक दिन हम यह मालूम करेंगे कि पहले
की अपेक्षा अब हम कितने आगे बढ़े अथवा पीछे हटे हैं।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे ॥" अथर्व १९।४३। १

देहली
वसन्त पञ्चमी १९८१ वि०

सर्वहित चिन्तक
अनुभवा नन्द सरस्वती "शान्त"

: १ :

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमा-सीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ।।

ऋ० १०-७१-१

अय मेरे अन्तरात्मन् ! प्रत्येक वस्तु का नाम रखते हुये जो वाणी आरम्भ काल में प्रेरित की गई है, और इन आदि पुरुषों में उत्तम एवं पाप रहित ज्ञान प्रेरित किया गया है; वह इनके पवित्र हृदयों में ही प्रेम पूर्वक प्रेरित और स्थापित किया जाता गया है ।

: २ :

उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाच-मुत त्वः शृण्वन्न शृणो-त्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ।।

ऋ० १०-७१-४

"मनुष्यों में से कोई-कोई इन ज्ञान-तत्वों को देखते हुए भी नहीं देखता, सुनते हुए भी नहीं सुनता ; किन्तु ये विद्या-बुद्धियें प्रत्येक मनुष्य के सामने अपने को ऐसे ही विसर्जन-समर्पण करती हैं जैसे कि एक पति-परायणा पत्नी अपने आपको अपने पति के सम्मुख प्रेरित करती है ।"

: ३ :

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा-बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उत्वे हृदा इव स्नात्वा उत्वे ददृश्रे ।।

ऋ० १०-७१-७

"कारण यह है कि इनमें से सब मनुष्य आँख और कान रखते हुए भी मानसिक प्रगतियों में एक जैसे नहीं बनाये गये हैं । इनमें से अनेक घरेलू तलैया के समान हैं और अनेक महान् तालाब के समान—जिसमें मानो स्नान करने से मानस मैल का नाश किया जा सकता है ।"

: ४ :

सक्तु-मिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाच-मक्रत।
अत्रा सखाय: सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मी-र्निहिताधि वाचि ।।

ऋ० १०-७१-२

"उपर्युक्त दोनों प्रकार के मनुष्यों में से दूसरे प्रकार के मनुष्य ही ऐसे होते हैं, जो कि चलनी से आटे की भाँति प्रत्येक वचन को विशुद्ध करते हुये मन द्वारा प्रेरित करते हैं। ये ही वे लोग हैं जो सख्य रूप से सख्य भाव को जानते हैं, इनकी वाणियों में मानो उत्कृष्ट लक्ष्मी का वास रहता है।"

: ५ :

इयं वेदि: परो अन्त: पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेत:।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभि-र्ब्रह्मायं वाच: परमं व्योम ।।

अथर्व० ९-१०-१४

"यही तो वह वेदि है, जो पृथिवी के भीतर पर भाग रूप से विहित है, यही तो वह ऐश्वर्य शाली मानव जीवन है, जो बल-वीर्य का भण्डार और प्रगतियों का मानो केन्द्ररूप वीर्य है। यही यज्ञरूप जीवन है, जो सारे संसार की मानो नाभि है और यही इस वाणी का ब्रह्मा है जो परम व्योम में व्यापक हो रही है।"

परमात्म-भावना ● २

: ६ :

न विजानामि यदि वेद-मस्मि निण्य: सन्नद्धो मनसा चरामि।
यदा मा-गन् प्रथमजा ऋत-स्यादिद् वाचो अश्नुवे भगस्य ।।

अथर्व० ९-१०-१५

"अय मेरे स्वामिन्! यदि मैं जानता हूँ, तब भी मैं यह नहीं ज़ानता कि मैं क्या हूँ और कहाँ हूँ—मैं तो मनो-भावना से मानो बँधा हुआ गुप्त रूप से

विचरण करता हूँ। ज्यों ही कि मुझे सत्त्व स्वरूप आपका बोध प्राप्त होता है, तभी मैं इस ऐश्वर्य ज्ञान का उपभोग कर सकता हूँ।"

: ७ :

असमं क्षत्र-मसमा मनीषा प्रसोमपा अपसा सन्तु नेमे।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यञ्च॥

ऋ० १-५४-८

"अय परमैश्वर्य स्वरूप परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं यह जान गया हूँ कि बल एवं बुद्धि में ये सभी प्राणी एक दूसरे के समान नहीं हुए हैं; किन्तु फिर भी इनमें से जो ध्यान शील लोग अपने कामों-कर्त्तव्यों का पालन करते हुए आत्म-बल को उन्नत करते रहते हैं—उन्हीं के लिये बल है, उन्हीं के भागों में पूज्यभाव है और उन्हीं के लिये पौरुष है।"

: ८ :

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्व वीरस्य बृहतः पति-र्भूः।
विश्व-माप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्य-मद्धा नकिरन्यस्त्वावान्॥

ऋ० १-५२-१३

"तुम ही तो हो जो, भूमण्डल को पैदा करते हो; तुम ही महान् उन्नत एवं दर्शनीय वीर भावों के अधिपति हो; सत्य ही तो है कि, तुम अपनी अपार महिमा से इस अनन्त आकाश एवं विश्व को सत्य से भर देते हो; इसी लिये यह भी सत्य ही है कि तुम्हारी समानता करने वाला दूसरा कोई न था, न है और न होगा।

: ९ :

त्वमग्ने प्रमति-स्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम्।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्यः॥

ऋ० १-३१-१०

"तुम ही महान् ज्ञान के स्वामी हो, तुम ही हम प्राणियों के पूज्य पिता हो, तुम ही हमें जीवन-आयु के देने वाले हो, हम तो आप के पुत्र मात्र हैं। अय अहीन एवं कभी न दबने वाले अमर स्वामिन्! नियम-व्रत के पूर्ण

पालक, आप ही को ये सैकड़ों जीवन-धन और हज़ारों वीर भाव अनाया
प्राप्त रहते हैं।"

: १० :

विद्मा ते अग्ने ! त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद् विद्मा तमुत संयत आजगन्थ॥
ऋ० १०-४५

"आपके तीनों लोकों में काम करने वाले त्रिगुणात्मक शक्ति-तत्त्वों
हम जानते हैं, आपके आधार भूत विश्वव्यापक पद को हम जानते हैं, आप
परम गुप्त-ओ३म्-नाम को हम जान गये हैं और आपके उस प
कारण तत्त्व को भी हम जान गये हैं कि जिसके द्वारा आप विश्व-वि
होते हैं।"

: ११ :

इन्द्रं वो विश्वत-स्परि हवामहे जनेभ्यः।
अस्माक-मस्तु केवलः॥ ऋ० १-७-

"हम तो उस परमेन्द्र देव को सम्पूर्ण सृष्टि से परे मानते हैं, पदार्थ म
से परे मानते हैं। हमारा तो जीवन सर्वस्व वही है और केवल वही है।"

: १२ :

उप त्वाग्ने ! दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥ ऋ० १-१

हे स्वामिन् ! इस आत्म जीवन के रखने वाले दिन प्रतिदिन, सायं
प्रातः अपनी-अपनी बुद्धि-शक्ति के अनुसार स्मरण करते हुए, प्रणाम करते
ध्यानावस्थित होते हुए ही आपको प्राप्त होते हैं।

: १३ :

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्य इव स्व ओक्ये॥ ऋ० १-९१

"अय सोमैश्वर्य के स्वामिन् ! आओ, हमारे मनोमन्दिरों में नि
रमण करो, और ऐसे ही रमण करो, जैसे गायें स्वतन्त्रता पूर्वक खेतों में

मनुष्य स्वतन्त्रता पूर्वक अपने घरों में रमण करते हैं।"

: १४ :

यदंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत् सत्यमंगिरः॥ ऋ० १-१-६

"अय परम प्यारे! तुम जो अपने भक्तों, उपासकों को परम सुख एवं परम शान्ति का दान किया करते हो; यह तुम्हारी अपनी ही सत्यता, सत्य-स्वरूपता है और तुम्हारी अपनी ही कृपा का परिणाम है।"

: १५ :

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम्॥
ऋ० १-५२-१२

"तुम इस सम्पूर्ण एवं व्यापक विश्व से भी परे हो, तुम स्वयं भूत हो, तुम ओजः स्वरूप हो और तुम उन्नति मात्र के लिए मानव मन को आकर्षित करने वाले हो। तुम अपने ही ओज को मानो प्रतिनिधि स्वरूप इस सीमान्त भूमण्डल, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक का निर्माण करते हो और स्वयं इन सब पर विजयी रूप से शासन करते हो।"

: १६ :

यान् राये मर्तान् सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च।
छायेव विश्वं भुवनं सिसिक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्॥
ऋ० १-७३-८

अय परमाग्निदेव! जिनको तुम जीवन-धन की ओर प्रेरित करते हो, हम जीवन धन के स्वामी उन्हीं में से हैं; क्योंकि तुम ही आदर्श की भाँति मानो सम्पूर्ण विश्व को सेचन करते हो और तुम ही पृथ्वी, आकाश एवं अन्त-रिक्ष को सर्वांगपूर्ण करते हो।

: १७ :

विधेम ते परमे जन्म-न्नग्ने विधेम स्तोमै-रवरे सधस्थे।
यस्माद्योने रुदारिथा यजे तं प्रत्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे॥
ऋ० २-९-३

"हे प्रकाशस्वरूप ! हम मानसिक भावनाओं द्वारा इस जन्म में आपका ही विश्वास करने वाले हों और पर-जन्म में भी आप की ही भक्ति साधने वाले हों । आप जिस भी कारण-भूत साधन से हमारा उद्धार करें, हम उसी साधन का भजन (सेवन) करने वाले हों; और उसी साधनभूत भावना की समृद्धि में भक्ति भावों को अर्पण करने वाले हों ।"

: १८ :

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं य-स्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥

ऋ० २-२३-

"तुम ही मनुष्य को अपनी सुन्दर ज्ञान नीतियों से सन्मार्ग परायण करते हो, तुम ही मानव जीवन की पूर्ण रक्षा करते हो, जो मनुष्य तुम्हारे ही लिए अपने को अर्पण करता है, उसे संसार का कोई पाप व्याप्त नहीं होता । तुम परम अज्ञानरूप ब्रह्मद्वेष को नष्ट करने वाले हो; तुम मन्युरूप अशान्तभाव को मार भगाने वाले हो, अय महामान्य ! सच तो यही है कि तुम अपनी ही महिमा से महिमान्वित हो रहे हो ।"

: १९ :

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो विबाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥

ऋ० २-२३-

"न तो उसे कोई पाप, न कोई दुर्गति, न कोई शत्रु और न कोई ज्ञान-कर्म को भिन्न-भिन्न रखने वाला कपटी ही किसी प्रकार दबा सकता है। यहाँ तक कि संसार भर की हिंसा वृत्ति से भी उसे बचाये रखते हो, अय महाप्रभो! जिसकी कि तुम स्वयं रक्षा करने वाले होते हो ।"

: २० :

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायां अस्ति वृत्रहन् ।
नकिरेवा यथा त्वम् ॥

ऋ० ४-३२-

"परमेन्द्र देव ! न तो कोई तुम से उत्तर ही है और न कोई तुमसे उत्तम ही। अय अज्ञानान्धकार को मारने वाले स्वामिन् ! कोई ऐसा भी तो नहीं है जैसे कि तुम हो।"

: २१ :

वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभिनोनुमः ।
अस्मां अस्मां इदुदव ॥ ऋ० ४-३२-४

"हम तो तुम्हारा ही सहयोग चाहते हैं और तुम्हारे ही लिए झुकना भी चाहते हैं; सचमुच हमारे तो इधर से, उधर से, सब ओर से तुम ही हो।"

: २२ :

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ ऋ० ७-५९-१२

"हम तीनों कारण सलिलों (मूल तत्वों) को सुखमय बनाने वाले सुन्दर एवं सरल बुद्धि को पुष्ट तथा उन्नत करने वाले, परम देव का आयजन करते हैं। पिता ! जब तक हमारे जीवन की अवधि है, तब तक हमें मृत्यु बन्धन से ऐसे ही मुक्त करो, जैसे किसी भी पक्षी को जीवन पर्यन्त जाल से मुक्त किया जाता हो, जैसे वृक्ष से फल को मुक्त किया जाता हो।"

: २३ :

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रय-त्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ऋ० ८-३-५

"हम सम्यग् भक्त जन परमेन्द्र देव की ही इन्द्रिय यज्ञ की पूर्ति के लिये, परमेन्द्र देव की ही जीवन यज्ञ की प्रगति में और परमेन्द्र देव की ही जीवन संग्राम की सफलता में पुकार करते हैं, और जीवन-वन की अतिवृत्ति के लिये भी उसी परम देव का आवाहन करते हैं"

: २४ :

यो नो दाता वसूना-मिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥ ऋ० ८-५१-५

"जो हमें स्वर्गीय संसार की सभी सुख-भूमियों का देने वाला है उसी परम देव की हम आराधना करते हैं। हम उस की परम दिव्य, निरन्तर नवीन तथा सुन्दर सुमति को जानते एवं प्राप्त होते हुए ही इन्द्रियसमुदाय रूप जीवन जगत् में प्रगति-शील होते हैं"

: २५ :

यो नो दाता स नः पिता महां उग्र ईशानकृत् ।
अपाम-न्नुग्रो मघवा पुरूवसु गो-रश्वस्य प्रदातु नः ॥

ऋ० ८-५२-५

"जो हमारे जीवन-जगत् का दाता है, वही हमारा पिता-रक्षक भी है; वह महान् तेजस्वी एवं महान् शासक है। वह परमैश्वर्य शाली तेजस्वी एवं परम व्यापक परमेश्वर ही हमें जीवन जगत् में प्रवेश करते हुए आत्म प्रगति एवं इन्द्रिय प्रगति का देने वाला हो"

: २६ :

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै ॥ ऋ० ८-६१-११

"न तो हम पापी होकर ही परमेन्द्र देव की मान्यता करते है, न जीवन धन से हीन होकर ही उसकी आराधना करते हैं, और न तेज हीन होकर ही उसकी उपासना करते हैं; हम तो जीवनैश्वर्य को परमोन्नत करने के लिये एक मत होकर उस महान् प्रभु को अपना सखा बनाते हैं"

: २७ :

सत्य-मिद्वा उ तं वय-मिन्द्रं स्तवाम ना-नृतम् ।
महां असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो, भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥

ऋ० ८-६२-१२

"हम तो सत्य स्वरूप मानकर उस इन्द्र देव की आराधना करते हैं, न कि मिथ्या समझ कर। वह जीवनैश्वर्य से हीन मनुष्यों के लिये मानो महान् वध है, और जीवनवैश्वर्य का सम्पादन करने वालों के लिए ही अनेक ज्योतियों का देने वाला है—परमेन्द्र देव की देनें सचमुच सुखमयी हैं"

: २८ :

अग्निं मन्ये पितर-मग्निमापि-मग्निं भ्रातरं सद-मिद् सखायम् ।
अग्ने-रनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुकं यजतं सूर्यस्य ॥

ऋ० १०-७-३

"मैं उसी प्रकाशदेव को अपना पिता मानता हूं, उसी को अपना परम हित-बन्धु समझता हूँ, उसी को अपना भाई-बन्धु मानता और उसी को अपना नित्य का सखा समझता हूं। मैं सूर्य के दिव्य तेज की आयोजना करने वाले उसी परमादरणीय महान् अग्नि देव की आराधना स्वीकार करता हूं"

: २९ :

यस्य द्यावा-पृथिवी पौंस्यं महद् व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्ये-न्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

ऋ० १-१०१-३

"यह पृथ्वी और आकाश जिस के महान् पौरुष का परिणाम है, सूर्य और चन्द्रमा जिसके मानो नियम में बंधे हुए हैं और संसार रूपी सम्पूर्ण समुद्र भी जिसके नियम-व्रत का पालन करते हैं—हम तो मारुतीय सेना के स्वामी रूप उसी परमेन्द्र देव का आवाहन करते हैं—सखा भाव के लिये आराधना करते हैं"

: ३० :

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचि-ष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्य-मेवासि सोम ॥

ऋ० ९-८८-८

"अय वरुणराज ! ये सब तुम्हारे ही नियम-व्रत-में कार्य हो रहे हैं; प्रय सोम ! तुम्हारा परम धाम महान् गम्भीर है। तुम शुचि स्वरूप हो और तुम एक सच्चे मित्र की भांति हमारे बन्धु हो; और हे सौम्य भाव के स्वामिन् ! तुम मानो एक सच्चे आर्य—मनस्वी की भांति बुद्धि धन के धनी हो"

: ३१ :

त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता-मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥

ऋ० ९-९७

"अय सोमैश्वर्य के स्वामिन् ! पवित्र करने वाले आपके ही सहारे हम इस जीवन संग्राम के लिये नित्य-निरन्तर कर्यव्य कर्मों का सञ्चय करते हैं। आप असीस दें कि ये सूर्य, चन्द्रमा, मूल प्रकृति, समुद्र, पृथ्वी आकाश आदि सब मिलकर हमारा महत्त्व बढ़ाने वाले हों"

: ३२ :

उत त्वं मघव-ञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत्।
यद्वीडयासि वीडु तत्॥

ऋ० ८-४

"स्वामिन् ! सुनिये, सच यही है कि जो आपको चाहता है, आप उसे चाहते हैं और जिसे आप जीवन की दृढ़ता देते हैं वह सचमुच दृ जाता है"

: ३३ :

मा नो हिंसी-ज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश्चाप-श्चन्द्रा बृहती-र्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋ० १०-१

"जो पृथ्वी का पैदा करने वाला है, जो आकाश का सर्जन करने है, जो सत्य धर्म को विकसित करने वाला है अथवा जो चन्द्रमा एवं आदि का उत्पन्न करने वाला है; वह परम प्रभु हमें मारने वाला न आओ ! हम सब मिल कर उस सुख स्वरूप स्वर्गीय परम तत्त्व की पूर्वक आराधना करें"

: ३४ :

तमीशानं जगत-स्तस्थुष-स्पति धियं जिन्व-मवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसा-मसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥

यजुः २५

जन-

"उस चर एवं अचर का शासन करने वाले स्वामी और उस बुद्धि शक्ति को प्रेरित-परिपूरित-करने वाले महा प्रज्ञ की अपनी उन्नति-रक्षा-वृद्धि के लिए हम सब मिल कर आवाहना करें। वही प्रभु हमारे जीवन वेद को पुष्ट करने वाला हो, उन्नति के लिए पथ प्रदर्शक हो, सुख-शान्ति के लिए परम रक्षक हो और जीवन सुख का पूर्ण करने वाला हो"

: ३५ :

वेदाह-मेतं पुरुषं महान्त-मादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वा-ति मृत्यु-मेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

यजु: ३१-१८

"मैं इस परम पुरुष को जान गया हूं जो महान् से भी महान् है, जो अखण्ड प्रकाश स्वरूप है और जो प्राकृत अन्धकार से सर्वथा परे—रहित—है। यह वही परम तत्त्व है कि जिसे जाने बिना परम धामके लिये कोई मार्ग ही नहीं सूझ सकता, जिसे जान कर ही मृत्यु से परे जाया जाता—जाया जा सकता—है"

: ३६ :

अग्ने ! विवस्व-दामरास्मभ्य-मूतये महे ।
देवो ह्य-सि नो दृशे ॥ साम० पू० १-१-१०

"हे परमाग्नि देव परमात्मन् ! हे सब के बसाने वाले वासुदेव ! हमारी रक्षा, वृद्धि एवं समृद्धि के लिए हमें अपनी ओर लाइये, हमें तो आप ही परम दर्शन के लिए परम देव हैं"

: ३७ :

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठा-दुक्थेभि-रग्ने जनयन्त देवाः ।
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजय-न्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ॥

साम० पू० १-७-६

"हे तेजोमय ! पर्वतों की चोटी पर से गिरे हुए पानी जैसे बिजली पैदा कर देते हैं, वैसे ही आप से प्रेरित हुए मंत्रों द्वारा दिव्य योगी जन आपको अपने हृदयों में प्रगट करते हैं। परम प्रशंसनीय आपको हमारी वाणी

रूप हृदयतन्त्रियें बजाती रहती हैं और अन्त में आपको ऐसे ही ग्रहण कर लेती हैं, जैसे सुधरे हुए घोड़ों से यात्रा में सफलता प्राप्त की जाती है"

: ३८ :

जातः परेण धर्मणा यत् सवृद्धिः सहाभुवः।
पिता यत् कश्यप-स्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः॥

साम० पू० १-६-

"आप परम धर्म रूप असम्प्रज्ञात समाधि से प्रगट होकर दर्शन देते हैं। आप अपने परम भक्तों—सच्चे उपासकों—के मानों साथी हैं। आप प्रत्ये अन्तर्दृष्टि—ज्ञानी के पिता, माता, प्रकाशक, भक्तिपति, ज्ञानी और व्याख्याता हैं"

: ३९ :

सोमं राजानं वरुण-मग्नि-मन्वारभामहे।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं बृहस्पतिम्॥

सा० पू० १-१०

"हम तो केवल उसी परमेश्वर की आराधना करते हैं कि जो सं स्वरूप है, जो जीवन—जगत् का राजा है, जो सारे संसार को आच्छादि करने वाला है, जो परम प्रकाश देव है, जो अखण्डनीय है, जो व्यापक है, ज्ञानमय है, जो महान् से भी महान् है और जो सम्पूर्ण दिव्य तत्त्वों अधिपति है"

: ४० :

राये अग्ने ! महे त्वा दानाय समिधीमहि।
ईडिष्वा हि महे वृषन् ! द्यावा होत्राय पृथिवी॥

सा० पू० १-१०-

"हे प्रकाशात्मन् ! हे सुख वर्षक ! हम सबसे बड़े—महान्-जीवन-का दान देने के लिए आपको चिताते हैं; आप हमें अपना श्रद्धा सम्पन्न भ बनाइये—हमें पृथ्वी एवं आकाश की परम शान्तिमयी भावना का दा कीजिये"

: ४१ :

क इमं नाहुषी-ष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् ।
स नो वसू-न्या भरात् ॥ सा० पू० २-१०-६

"स्वामिन् ! वह कौन है जो मानव जाति में हमें भक्ति रस से परम तृप्त—परम शान्त—कर सकता है ? वह आप ही हैं, कृपा करके आप ही हमारे लिये निर्विघ्न भक्ति-धन उपस्थित कीजिये"

: ४२ :

अरं त इन्द्र ! श्रवसे गमेम शूर ! त्वावतः ।
अरं शक्र ! परेमणि ॥ सा० पू० ३-२-६

"हे परमेन्द्र देव ! हम आपके उपदेश सुनने के योग्य हों, हे शूरात्मन् ; हम आप तक पहुँचने में समर्थ हों और हे सर्व शक्ति सम्पन्न ! हम आप के परम प्रेम में विलीन हो जाँय"

: ४३ :

आ या-ह्यु प नः सुतं वाजेभि-र्मा हृणीयथाः ।
महां इव युवजानिः ॥ साम० पू० ३-४-५

"अय सदैव युवति रहने वाली प्रकृति देवी के पति देव ! अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के साथ हमारे हृदयों में विकास करो, हमारा वह सोम सर्वस्व आपकी प्रतीक्षा में हैं; स्वामिन् ! हमारी अवहेलना न हो—जैसे पिता के द्वारा पुत्र की अवहेलना नहीं होती"

: ४४ :

यदिन्द्र ! शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
अस्माक-मंशूं मघवन् ! पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥
साम० पू० ४-१-६

"हे जगदैश्वर्य स्वामिन् ! आप क्योंकि हमारे शासक हैं, अतः हमारे मनों पर जितने भी धर्म—नियम—हित भाव पैदा हो गये हैं उन सब को बाहिर निकाल दीजिये; आप हमारे परम प्रेमास्पद मन को बसने योग्य परम पद में उन्नत होने दीजिये—उसे आगे बढ़ने दीजिये"

: ४५ :

त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मण-स्पतिः।
पुत्रैर्भ्रातृभि-रदिति-र्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः॥

सा० पू० ४-[illegible]

"सारे संसार की रचना करने वाला, हमारी स्तुति-प्रार्थना का सु[illegible] वाला, सर्वत्र सुख शान्ति का बरसाने वाला और महान् ज्ञान सागर [illegible] स्वामी परमेश्वर हमारे दिव्य वचनों की रक्षा करे, हमारे कभी न टलने वा[illegible] वचनों की रक्षा करे, हमारे त्राहि मां त्राहि-मां वचनों का आदर करे। जिस से पुत्र और भाई आदि के मोह-मिष से यह महा माया प्रकृति [illegible] पानी की भांति पी न जाये"

: ४६ :

यो नो वनुष्य-न्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा।
क्षिधी युधा शवसा वा त-मिन्द्रा-भीष्याम वृषमण-स्त्वोताः॥

साम० पू० ४-५[illegible]

"हे परमेन्द्र देव ! जो कोई भी हमारे जीवनोपयोगी विचार, विवेक ए[illegible] वैराग्यादि साधनों पर दुर्विचार अथवा दुराचारादि हथियारों से मनमा[illegible] मार करता हुआ सामने आता—आना चाहता—है, हम भी सदाचार[illegible] गुण-धर्मों द्वारा आपकी रक्षा पाये हुए उसका सामना करने में समर्थ हों-[illegible] ऐसे सभी मन्द विचारों एवं हीन आचारों को दूर भगाने में सम[illegible] हो सकें"

: ४७ :

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चा-धितिष्ठति।
स्व-र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

अथर्व १०-८-[illegible]

"जो भूत में है, जो भविष्यत् में है, जो सब पर शासक के रूप में विरा[illegible] रहा है; स्वर्गीय सुख—परमानन्द—ही जिस का परम धाम है—उसी पर[illegible] ब्रह्म परमात्मा के लिये नमन हो—प्रणाम हो"

: ४८ :

यतः सूर्य उदे-त्यस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु ना—त्येति किं चन ॥

अथर्व १०-८-१६

"जिस शक्तितत्त्व की सहायता से सूर्य उदय होता और जिस शक्ति तत्त्व जाकर अस्त होता है; उसी परम तत्त्व को मैं परब्रह्म मानता हूं—उसका ल्लघंन दूसरा कोई भी शक्ति तत्त्व नहीं कर सकता"

: ४९ :

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥

अथर्व ७-४०-१

"जिसके नियम—व्रत—को सभी प्राणी प्राप्त होते हैं, जिस के नियम— में प्रकृति की सारी शक्तियें अपने-अपने कार्य में उपस्थान करती हैं और सके नियम—व्रत—में सारी पुष्टियों का पति—आत्मा—प्रवेश पाता है; परम सरस एवं परम ज्ञानमय ब्रह्म का हम अपनी उन्नति के लिये वाहन करते हैं"

आत्म-भावना ३

: ५० :

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनाना-मभिश्रीः।
इतो जातो विश्व-मिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥

ऋ० १-९८-१

"सम्पूर्ण पुरुष जीवन में व्यापक होने वाले आत्मदेव की सुमति में ही सब कर्तव्य परायण हों; वह जीवन-विश्व का राजा और जीवन-लक्ष्मी मानो पति है। इधर पैदा होता और उधर इस सारे विश्व की मानो ख्या करने लगता है—वही पुरुष जीवन में व्यापने वाला और ज्ञान— ाश से प्रगति-शील रहता है"

: ५१ :

भूरि कर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम्।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभज-न्नेति वेदः॥
ऋ० १-

"महान् कर्तव्य परायण महान् बल युक्त, महान् पौरुष युक्त और बल रूप आत्मा के लिये ही हम जीवनैश्वर्य के उन्नत करने वाले हों; वह आत्म देव है कि, जो एक वीर की भांति शत्रुओं के जीवन धन को अयजन शील मनुष्यों के सुखैश्वर्य का आदर पूर्वक विभाग करता हुआ यात्रा में प्रवृत्त होता है"

: ५२ :

इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत्॥
ऋ० १-

"इन्द्रात्मा अपने इन्द्रिय-बलों, मरुदात्मा अपने मरुद्बलों और माता अपने अखण्ड नियमों द्वारा हमारे लिये सुख रूप हो—शान्ति

: ५३ :

जन्म-ञ्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभि-रिध्यते अजस्रः
तस्य वयं सुमतौ यज्ञिय-स्यापि भद्रे सौमनसे स्याम॥
ऋ०

"वह जन्म-ज्ञानी जन्म-जन्म में व्यापक हो रहा है और वह सब अमित्र भावों में भी अपनी शक्ति से निरन्तर उन्नत हो रहा है। यज्ञीय आत्म देव की सम्मति में चलने वाले हों, अपनी सुख शांति सुखमय मनो-भावों के लिये—सुमति में कार्य करने वाले हों"

: ५४ :

यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमे दमे।
कवि र्गृहपति-र्युवा॥
ऋ०

"जो आत्मा प्रत्येक जीवनगृह में पांचों प्रकार के मनुष्यों बिराजमान होता है, जो कवि है, जो इस जीवन—गृह का स्वामी स्वयं युवा है"

: ५५ :

स नो वेदो अमात्य-मग्नी रक्षतु विश्वतः ।
उतास्मान् पात्वंहसः ।। ऋ०-७-१५-३

"वह आत्माग्नि हमारी सब तरह से रक्षा करने वाला हो, वह आत्माग्नि हमारे जीवन-धन का स्वामी हो और वह हमें पाप-वृत्ति से ऐसे ही बचाने वाला हो, जैसे राजा अपने अमात्य को बचाता है"

: ५६ :

स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ।।
ऋ० ७-९७-४

"जो विश्व—जीवन का वरण करने वाला है, और जो महान् इन्द्रियों का अधिपति रूप आत्माग्नि है ; वह कर्म गतियों से प्रेरित होता हुआ ही हमारी मानव योनियों में स्थान पाने वाला हो । वह सुवीर्य—धन की कामना करने वाला हो और दुःख-दरिद्र से परे रहने वाले मानव जीवनों के लिये उसी सुख—शान्ति का वरसाने वाला हो"

: ५७ :

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ।।
ऋ० ८-४६-९

"जो कठिनता से टलने वाला है, जो सारे विश्व का वरण करने वाला है, जो परम यशस्वी है और जो इस जीवन संग्राम में परम विजयी है; वही आप—अय परम बलिष्ठ एवं वसुरूप आत्मन् ! हमें इस ऐश्वर्यमय संसार में ग्रहण कीजिये—हम गौरव पूर्वक संसार की इस गौशाला (इन्द्रियों की वास भूमि) रूप मानव जीवन में प्रवेश करें"

: ५७ :

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
यत्सीमुपह्वरे विदत् ।। ऋ० ८-६९-६

"उसी तेजस्वी इन्द्रात्मा के लिए ये इन्द्रिय रूप गायें साधन भूत मा
का दोहन करती हैं ; जो इस जीवन के निकटवर्ति हृदय प्रदेश में ज्ञान
का राज्य कर रहा है"

: ५८ :

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ।।

ऋ० ९-९८

"अय मित्रो ! आओ । तुम और हम सब बुद्धिमान् मिलकर उस
रोचक, परम मनोहर जीवन संग्राम का विजयी, ज्ञान रखने वाले एवं
संग्राम को ही अपनी वास भूमि बनाने वाले आत्मदेव को प्राप्त हों-जानें"

बृहस्पति-र्मे आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ।। अथर्व० १६-

"मेरा आत्मा महान् इन्द्रिय देवों का पति है, मेरा आत्मा मानव-मन
स्वामी है और मेरा आत्मा मेरे लिये परम मनोहर एवं हृदयङ्गम है"

: ५९ :

सना-देव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमां असि क्रतुमां इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥

ऋ० १-६२

"अय दर्शनीय आत्मदेव ! सनातन से ये जीवन-धन तेरे बाहुबल
विराजते हैं, तेरे अधिकार में होने से न तो इन धनों में कमी ही आती
और न इनका नाश ही होता है । तुम ज्ञानमय हो, तुम कर्ममय हो,
इन्द्रात्मा हो और तुम धीरात्मा हो । अय ज्ञान-किरणों के स्वामिन् ! अ
इन ज्ञान किरणों से हम सबको प्रकाशित करदो"

: ६० :

विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे ।
अधा ते सुम्न-मीमहे ।। ऋ० ३-४२

"अय काव्यात्मन् ! हम जानते हैं कि, तू जीवन संग्रामों में परम वि
और अजेय है, इसी लिये हम तेरे सुख-सौभाग्य की कामना करते हैं
इन्हीं कामनाओं की पूर्ति में लगे रहते हैं"

: ६१ :

ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मि-न्नूषु सवने मादय-स्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥

ऋ० ७-२९-२

"अय ब्रह्मवीर ! तुम ब्रह्मकृति-पूर्णज्ञान-का सेवन करते हुए नवीन-से-नवीन इन्द्रिय-शक्तियों के साथ इस जीवन-संग्राम में प्रवेश करो । इसी संसार यज्ञ में हमारे जीवनों को आनन्दित करो और हमारे इन ज्ञानस्तवनों को सुनते रहो"

: ६२ :

भद्रं भद्रं न आभ-रेष-मूर्जं शतक्रतो ।
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥

ऋ० ८-९३-२८

"अय कर्तव्यनिष्ठ आत्मदेव ! जीवन में सुख रूप बल और सुख रूप पौरुष को पूर्ण कर दो-यदि तुम जीवन को सुखमय बनाते हो तो उक्त दोनों से इसे अवश्य पूर्ण कर दो"

: ६३ :

स नो विश्वा-न्याभर सुवितानि शतक्रतो ।
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥

ऋ० ८-९३-२९

"अय शतक्रतो इन्द्रात्मन् ! यदि तुम हमारे जीवनों को आनन्द एवं सुखमय बनाना चाहते हो तो, इन जीवनों को विश्व-विस्तृत ब्रह्म कृतियों से भर दो-इन्हें सत्कर्ममय बना दो"

: ६४ :

अन्त-र्यच्छ जिघांसतो वज्र-मिन्द्रा-भिदासतः ।
दासस्य वा मघव-न्नार्यस्य वा सनुत-र्यवया वधम् ॥

ऋ० १०-१०२-३

"अय इन्द्रात्मन् ! दास भावों एवं हिंसक भावों की भीतरी गतियों में अपने ज्ञान-वज्र की मार करो । अय मघवन् ! आर्य भावों से युक्त हो अथवा अनार्य भावों से पूर्ण ; ऐश्वर्य हीन, प्रगति हीन, और सार हीन जीवन का उसकी अपनी ही गति से नाश हो जाता है"

: ६५ :

पुन-रेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते निरमय मय्येवाऽस्तु मयि श्रुतम् ॥ अथर्व १।१

"अय वाणियों के स्वामिन्! एक वार फिर आ, और दिव्य मन से
होकर आ। अय जीवन-धन के स्वामिन्! आ, और हम सबको निर
कर, मेरा श्रुत ज्ञान मुझमें चरितार्थ हो—मेरा ज्ञान मेरे कर्म जीवन में
कर उसी में चरितार्थ हो"

: ६६ :

अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्त-र्महिमा ते पृथि-व्याम्।
शुनो! दिव्यस्य यन्मह-स्तेना ते हविषा विधेम् ॥ अथर्व ६-

"प्राणों में तुम्हारा जन्म (प्रादुर्भाव) होता है, हृदयाकाश में तुम्हा
निवास होता है और अन्तरिक्ष एवं भूमि में तुम्हारी महिमा फैलती
प्रगतिशील एवं दिव्य आत्मा के लिये जो-जितना-भी महत्त्व प्राप्त है, इस
महत्त्व-महिमा-द्वारा हम श्रद्धा के साथ तुम्हारा स्वागत करते हैं"

"आत्म-विश्वास"

: ६७ :

अह-मिन्द्रो न पराजिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदाचन।
सोम-मिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥

ऋ० १०-

"मैं आत्मा हूं, मेरे जीवन-धन का कभी पराजय नहीं हो सकता
मृत्यु के लिये भी कभी नहीं ठहर सकता (मैं अमर हूं) जीवन-सो
सम्पादन करने वाले मनुष्य शक्ति धन के लिये मेरी ही तो याचना कर
मेरी मित्रता में आये हुए जन कभी मारे नहीं जाते-जासकते"

: ६८ :

अभीद-मेक-मेको अस्मि निष्षाडभी द्वा किमु त्रयः करन्ति
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवो ऽनिन्द्राः

ऋ० १०-

"मैं अकेला होता हुआ भी पूर्ण पौरुष का स्वामी हूं, एक दो अथवा तीन आदि शत्रु मिल कर भी मेरा क्या कर सकते हैं ; ओखली में धानों की भाँति अकेला ही अनेक कठोर जीवनों भावों को कुचल दे सकता हूं, ये अनात्मवादी हैं क्या चीज जो मेरी निन्दा कर सकते हैं।"

: ६९ :

मां देवा दधिरे हव्यवाह-मपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम्।
अग्नि-र्विद्वान् यज्ञं नः कल्पयाति पञ्च यामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम्॥

ऋ० १०-५२-४

"आवाहनों के ग्रहण करने वाले मुझ आत्मा को ही ये सब इन्द्रियदेव धारण करते हैं। अनेक कष्टदायक स्थानों (योनियों) में विचरते एवं मानव योनि में आते हुए मुझे ही धारण करते हैं। यही तो आत्माग्नि है जो जानता हुआ हमारे इस पाञ्चभौतिक, त्रिगुणात्मक एवं सप्तधातुमय जीवन यज्ञ की कल्पना-रचना करता है।"

: ७० :

इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः।
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना॥

ऋ० १०-६१-१९

"यह जीवन ही तो मेरी नाभि है, यही तो मेरी वास भूमि है, ये मेरे ही अधीन तो इन्द्रियें हैं। यह मैं ही तो इस जीवन जगत् में सब कुछ हूं। अहा ! सत्य स्वरूप परब्रह्म से ब्रह्माण्ड में व्याप्त होने वाली आदि वाणी (वेद वाणी) ही तो है जो प्रगट होते ही इस जीवन जगत् को व्याप्त करने लगती है।"

: ७१ :

अय-मेमि विचाकशद् विचिन्वन् दास-मार्यम्।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीर-मचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥

ऋ० १०-८६-१९

"देखो ! मैं ही यह दास और आर्य भावों की विवेचना पहचान करता

हुआ तथा व्यक्त करता हुआ जीवन जगत् में प्रवेश कर रहा हूँ। मैं जीवन का फल भोग करता हूं, मैं धीर जीवन की ओर ही ध्यान रखता हूं; इन्द्रात्मा ही सम्पूर्ण विश्व में उत्तर अपेक्षाकृत उत्तम है।"

: ७२ :

अहं त्वष्टेव बन्धुरं पर्यंचामि हृदा मतिम्।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ऋ० १०-११

"जिस प्रकार एक कारीगर प्रत्येक वस्तु की गांठ लगाता है; इसी प्र मैं अपने मन के साथ बुद्धि को लगाता हूं। मैंने अनेक बार जीवनैश्वर्य उपभोग किया है।"

: ७३ :

नहि मे अक्षिपच्चनाच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः।
कुविद् सोमस्यापामिति ॥ ऋ० १०-११

"मेरे दृष्टिकोण मूल उद्देश्य को पाँचों प्रकार के प्राणी मिलकर इधर-उधर नहीं कर सकते। मैंने अनेक जन्मों का उपभोग किया और देख लिया है।"

: ७४ :

नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति।
कुविद् सोमस्यापामिति ॥ ऋ० १०-११

"ये पृथ्वी और आकाश दोनों मिल कर भी मेरी शक्ति के किसी भाग का सामना-मुकाबला नहीं कर सकते; यह मैंने अनेक बार जीवन का पान करके जाना है।"

: ७५ :

अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः।
कुविद् सोमस्यापामिति ॥ ऋ० १०-११

"मैं महान् इन्द्रिय देवों में भी महान् हूं, मैं पृथ्वी से लेकर आकाश परिभ्रमण करता हूं और मैं अनेक जन्म जीवनों का फल भोग करता हूं।"

: ७६ :

गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ऋ० १०-११९-१३

"मैं इन्द्रिय देवों की सेवा ग्रहण करता हुआ उनसे अलंकृत होकर ही जीवन-गृह में प्रवेश किया करता हुं और ऐसे ही अनेक वार जीवनामृत का पान किया करता हूँ ।"

: ७७ :

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्राह्मणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥
ऋ० १०-१२५-५

"वह मैं ही हूँ जो इन्द्रियों एवं मनुष्यों द्वारा सेवन किये गये प्रत्येक वस्तु तत्त्व की व्याख्या किया करता हूँ । मैं जिस भी वस्तु तत्त्व अथवा शक्ति तत्त्व की कामना करता हूँ । उसे ही उत्तेजित, विकसित करने लग जाता हूँ—चाहे वह ब्रह्म तत्त्व हो, ज्ञान तत्त्व हो अथवा बुद्धि-तत्त्व ही क्यों न हो ।"

: ७८ :

मूर्धाऽहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥
अथर्व० १६-३-१

"मैं सारे जीवन धन का मानो मस्तक हूँ और समान रूप से सब का मस्तक बनने की कामना रखता हूँ ।"

: ७९ :

अहं पशुनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नियच्छतु ॥
अथर्व० १९-३१-६

"मैं सभी प्राणधारी जीवनों का अधिपति बनूं, पुष्टपति परमेश्वर मुझ में सम्पूर्ण पुष्टियों का निवास, विकास करे । प्रशंसनीय परमेश्वर मुझ में निरन्तर जीवन धनों की स्थापना करता रहे ।"

: ८० :

अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं देवस्य शर्धतः ॥

ऋ० २-२३

"जो कोई भी आसुरी मन से हमारी हानि करता है। हम अनु
लोगों को मन माने उग्र रूप से मारना चाहता है; अय महामहिम !
हिंसक एवं पापी का कोई भी हथियार हमारा स्पर्श न करने पावे; ह
आप की कृपा से उस दुर्गति सम्पन्न पापी के क्रोध को शान्त और फल
बना दें ।".

: ८१ :

विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद् वसुपतिर्वसूनां देवां ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥

ऋ० ६-५

"हम सदा सुन्दर मन से मनस्वी बनें, सदैव बढ़ते हुए सौर तेज के दे
वाले हों। हमारे भक्ति भावों को ग्रहण करता हुआ एवं साक्षात् होने वा
वसुपति परमात्मा उन्नति द्वारा देवों को पदार्थ मात्र में प्र
पाने की शक्ति दे और ऐसा बना दे कि वे दिव्य मन की सहायता
अग्रगामी हों।"

: ८२ :

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥

ऋ० ८-१९

"हे स्वामिन् ! आसुरी वृत्ति पर विजय पाने के लिये हमारे मनों
दिव्य बना दो, जिससे कि वह प्रत्येक आसुरी भाव के संग्राम में सहनशी
एवं विजयी हो। इन बढ़ती हुई आसुरी वृत्तियों का पराभव—पराजय—

और हम सब अपनी मानसिक भावनाओं की सहायता से आपका भजन करने वाले हों।"

: ८३ :

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

यजुः ३४-१

"मेरा जो दैवी मन जाग्रत अवस्था में दूर तक पहुँच जाता है और स्वप्न में भी दूर-दूर की सैर करता है, मेरा जो मन एक ज्योति है। वही मन प्रत्येक प्राणी के लिए शुभ कामना करने वाला हो।"

: ८४ :

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।। यजुः ३४-२

"जिस मनोदेव की सहायता से धीर, वीर एवं मनीषी जन, जीवन-संग्रामों तथा जीवन-यज्ञों में कर्त्तव्य कर्म का अनुष्ठान करते हैं; जो प्रत्येक प्राणी में वास करते हुए यज्ञीय और अपूर्व शक्तिधर हुआ है। मेरा वही मन प्राणिमात्र के लिए शुभचिन्तक हो।"

: ८५ :

यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियेत तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

यजु० ३४-३

"जो बाह्य ज्ञान का द्वार, अन्तर्जीवन की अमृत ज्योति, देवमार्ग का दर्शक और धैर्य का प्रतिनिधि है; जिसकी सहायता के बिना कोई भी काम किया जाना असम्भव है। मेरा वही मन प्रत्येक प्राणी का हिताकांक्षी हो।"

: ८६ :

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परि गृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।। यजु० ३४-४

"जिस अमृत मन के द्वारा इस भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान रूप सम्
काल-चक्र का ज्ञान प्राप्त किया जाता है; जिस अमर मन के द्वारा इस स
होता जीवनयज्ञ का विस्तार किया जाता है। मेरा वही मन सबके लिए
भावनाओं का प्रगट करने वाला हो।"

: ८७ :

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्त ७ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।ऋ० ३४

"जिस मनोहर मनोमन्दिर में ज्ञान, कर्म एवं उपासना, रथ की नाभि
अरों की भाँति प्रतिष्ठित होते हैं; जिस मनोमन्दिर में प्राणिमात्र की चि
वृत्तियां माला में मनकों की भाँति पिरोई रहती हैं। मेरा वही मन सबके
भव्य भावनाओं का स्रोत हो।"

: ८८ :

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठ तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।
यजु० ३४

"परमात्मन्! जो मन घोड़ों को चलाने वाले सवार की भाँति अ
लगाम से घोड़ों की भाँति तमाम मनुष्यों को इधर-उधर चलाता रहता है;
मन हृदय देश में प्रतिष्ठित, तेजस्वी एवं भारी वेग रखने वाला है। मेरा व
मन सुख शान्ति का घर हो, कल्याण-कामना का केन्द्र हो और शिवसंकल्प
अधिष्ठान हो।"

बुद्धि-भावना

: ८९ :

आराधिता परिराधिता या कशीकेव जङ्गहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ।। ऋ० १-१२६

"जो बुद्धि उत्तम रीति से ग्रहण और नियोजित हुई चाबुक की भांति आत्मवश होती है, वह सम्पूर्ण प्रगतिशीलों में प्रगतिशील होकर मेरे लिए सैकड़ों भोग्य जीवन-पदार्थों को देने वाली हो ।"

: ९० :

भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ।।

ऋ० २-३८-१०

"बुद्धि के सौभाग्य स्वरूप परम बुद्धितत्त्व को उन्नत करने वाले, हम नर श्रेष्ठों की इन्द्रिय देवों की शक्ति स्वामी आत्मदेव पूर्ण रक्षा करने वाले हों । जो लोग भी इस देवाधिदेव के संगभाजन होते हैं, जीवन-धन के प्रकाशित करने वाले उसी बुद्धि देव के हम प्रिय हों, प्रेम-पात्र हों ।"

: ९१ :

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या मातां ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग् वंकुरापा पुरीषम् ।।

ऋ० ५-४५-६

"अय मित्रो ! आओ, हम सब मिल कर उस बुद्धिमाता का आवाहन करें जो इन्द्रियज्ञान-पदार्थ ज्ञान के मानो भण्डार मात्र को अपने में ले लेने वाली है । वही वह मेधा शक्ति है जिससे प्रत्येक मनुष्य प्रवेश बल को जाग्रत करता है, यही वह धारणा शक्ति है जिससे प्रत्येक कर्तव्यनिष्ठ मनुष्य पूर्ण फल को प्राप्त करता है ।"

: ९२ :

धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां यया तरन् दशमासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्या-मात्यंहः ।।

ऋ० ५-४५-११

"अय दिव्य जीवन के रखने वाले विद्वज्जनो ! मैं आपकी स्वर्ग सुख-दायिनी उस बुद्धि शक्ति को अपने कर्मों में धारण करने वाला बनूं, जिससे प्रत्येक दश माहा या नौ माहा बालक जीवन के अथाह सागर से पार जाने

योग्य होता है, जिस बुद्धि शक्ति की मदद से हम घोर पापों से भी
सकते हैं"

: ६३ :

त्वं विष्णो सुमतिं विश्व जन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरे-रश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥

ऋ० ७-१००

"अय सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले परमेश्वर ! तू हमें संसार
का हित करने वाली और सर्वथा निर्मल-निर्दोष परम पवित्र बुद्धि शक्ति
दान दे; हमारे जीवन में ऐसी ही बुद्धि का सम्पर्क हो जैसे कि विस्तृ
महान्, प्रगति शील, और देदीप्यमान स्वयं जीवन धन का सम्पर्क होता है"

: ६४ :

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥

ऋ० ८-४२

"हे वरुण देव ! शिक्षा पाये हुए मुक्त भक्त की इस कर्मशील एवं प्रगति
शील बुद्धि का उत्तम शासन हो वह शासन उस बुद्धि का हो कि जिससे ह
सम्पूर्ण दुर्गुणों-दुर्गतियों से छूट सकें और संसार-सागर से पार ले जा
वाले इस जीवन-जहाज पर सवार हो सकें"

: ६५ :

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधया-ग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ य० ३१-१

"जिस मेधा शक्ति की देवजन, महात्मा जन और पित्तर जन भावन
करते रहते हैं। अय प्रकाश स्वरूप ! आज उसी मेधा माता से मुझे मेधावी
मातृमान्-करो और इस प्रकार मेरा कल्याण साधन करा"

: ६६ :

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधा-मिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता दधातु मे ॥ यजुः ३२-१

"वरुणात्मन् ! मुझे सुबुद्धि का दान दे, परमाग्नि देव ! मुझे सद्बुद्धि का दान दे, और प्राणपति रूप परमात्मा मुझे मेधा बुद्धि का दान दे। इन्द्रात्मा मुझ में विवेक शक्ति की स्थापना करे, प्राणात्मा मुझ में धारणा शक्ति की प्रतिष्ठा करे, और सारे विश्व को धारण करने वाला विश्वात्मा मुझ में मेधा शक्ति की योजना करे"

: ९७ :

मेधां-महं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूता-मृषिष्टुताम् ।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभि-र्देवाना-मवसे हुवे ।।

अथर्व० ६-१०८-२

"दिव्य कामों एवं इन्द्रिय देवों की पूर्ण रक्षा, पूर्ण वृद्धि, तथा पूर्ण प्राप्ति के लिये, जीवन के प्रारम्भ काल में सब से पहले मैं ज्ञान के रखने वाली, ज्ञान की प्रेरणा करने वाली, ऋषियों द्वारा प्रस्तुत की गई, और ब्रह्मचारियों द्वारा ग्रहण की जाने वाली बुद्धि देवी का आवाहन करता हूं"

: ९८ :

यां मेधा-मृभवो विदु-र्यां मेधा-मसुरा विदुः ।
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदु-स्तां मय्यावेशयामसि ।।

अथर्व० ६-१०८-३

"जिस मेधा को बड़े-बड़े कारीगर प्राप्त करते हैं, जिस मेधा को बड़े बड़े वीरजन प्राप्त करते हैं, और जिस मेधा देवी को ऋषि एवं मुनि जन प्राप्त करते हैं; उसी मेधा शक्ति का हम अपने में आवाहन करते हैं"

: ९९ :

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ।।

अथर्व० ६-१०८-४

"जिस धारणा बुद्धि को महान् कर्मेष्ठि और मेधावी ऋषि जन धारणा-प्राप्त करते हैं; अय मेरे परमेश्वर ! उसी पवित्र मेधा से आज मुझे मेधावी बना दो- मेधापति बनादो"

: १०० :

मेधां सायं मेधां प्रात-र्मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ।।

अथर्व० ६-१०८

"हम इसी धारणा देवी को सायंकाल के समय, इसीको प्रातःकाल समय और इसी को मध्याह्न काल के समय; इसी को सूर्य की प्रत्येक किरण द्वारा और इसी धारणा देवी को अपने प्रत्येक वचन के द्वारा धारण करते हैं—अपने में स्थापित करते हैं "

इस लिये :—

: १०१ :

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभि-रश्वेभि-रागहि ।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभि-स्त्वं नो असि यज्ञिया ।।अथर्व० ६-१०८

"अय मेधादेवि ! तुम ही सबसे पहले इन्द्रियों द्वारा और जीवन की नाना प्रकार की गतियों द्वारा हम में प्रवेश करती हो । तुम प्रकाश की प्रत्येक किरण के साथ हममें प्रवेश करती हो और इसीलिये तुम हमारी पूज्य हो जीवन यज्ञ की सामग्री हो"

सारस्वत-भावना

७

: १०२ :

यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इडां सुवीरा-मायजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ।।

ऋ० १-४०-

"जो विचार शील आत्मा के प्रति सुन्दर एवं उपयुक्त मानव जीवन रूपी वसु-धन-का दान करता है ; वही सबसे बढ़ कर यशस्वी और अक्षय यश का धारण करने वाला है; इस लिये हम पाप रहित, उत्तमतापूर्वक संसार सागर से तैरा ले जाने वाली एवं सुवीर भावों के पैदा करने वाली इडा सरस्वती-देवी की आयोजना करते हैं"

: १०३ :

माता देवाना-मदिते-रनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे॥

ऋ० १-११३-१९

"अय सम्पूर्ण विश्व की वरण-स्वीकार-करने वाली ! तू सारे जीवन जगत् की मानो जननी है; प्रकृतिमाता की मानो सैनिक शक्ति है और जीवन यश की मानो ध्वजा है। सुख-सौन्दर्य को उन्नत करती हुई एवं सत्कर्मों का विस्तार करती हुई महान् ज्ञान-प्रकाश के लिये सर्वत्र फैल जा-व्यापजा और प्राणिमात्र को तेजस्वी बना दे"

: १०४ :

सरस्वती साधयन्ती धियं न इडा देवी भारती विश्वतूर्तिः।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य॥

ऋ० २-३-८

"सरस्वती देवी हमारी बुद्धियों का साधन करती हुई, दिव्य ज्योतियों की स्वामिनी इडा देवी और भवसागर से पार उतारने वाली भव्य भारती ये तीनों दिव्य देवियें हमें शरण में लें और हमारे इस विस्तृत जीवन के पवित्र मनो मन्दिर में अपने अखण्ड आसन की स्वभावानुसार रक्षा करने वाली हो"

: १०५ :

सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून्।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शंडिकानाम्॥

ऋ० २-३०-८

"अय गतिविधि की स्वामिनी ! तू हमें भी उन्नति-प्रगतिशील बना; तू अभय एवं सहन शक्तियों के कारण ही शत्रुभावों पर विजय प्राप्त करती है, और तेरा इन्द्रात्मा भी इन आसुरी भावों के नेता रूप महा बली, दुर्धर्ष एवं बढ़ते हुए प्रबलभाव को पराजित करने में प्रवृत होता है"

: १०६ :

यास्ते राके सुमतय: सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ।।

ऋ० २

"अय पूर्ण प्रकाश की स्वामिनि ! अय सुभगे ! अय हजारों पुष्टि में रमण करने वाली ! तेरे जितने भी सुन्दर एवं सुभग बोध हैं, कि तू प्रत्येक ध्यानी को बोध का दान करती है, उन्हीं सुमतियों तथा द्वारा आज हमें मनस्विभाव से प्राप्त हो"

: १०७ :

आ भारती भारतीभि: सजोषा इडा देवैर्मनुष्येभिरग्नि:।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ।।

ऋ० ३

"सु-रीति के सेवन की हुई भारती अपने भारती भावों से, वि अपने दिव्य भावों से, आत्मदेव अपने मननभावों से और सरस्वती देवी सारस्वतभावों से मानव जगत् की ये तीनों देवियें अपने-अपने दिव्यभाव परिपूर्ण होकर आत्माग्नि के इस विशाल जीवन में विराजमान हों"

: १०८ :

इयं शुष्मेभि-र्विसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभि:।
परावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभि: सरस्वतीमा विवासेम धीतिभि: ॥

ऋ० ६-

"यही सरस्वती देवी इच्छा भक्ति के रूप में प्रबल विचार तरंगों के मिल कर जीवन जगत् के एक-एक पर्व सिरे का ऐसे ही विभेदन कर दे जैसे प्रबल प्रवाह रखने वाली नदी अपने तेजस्वी तरंगों से किनारों-वृक्षों विभेदन कर डालती हैं। जीवन जगत् के एक-एक पर्व तक मार करते इसी इच्छा शक्ति रूप सरस्वती की उन्नति के लिए हम सब चिन्तन एवं आचरण क्रिया द्वारा साधना करते रहते हैं"

: १०६ :

सरस्वति देवनिदो निबर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥

ऋ० ६-६१-३

हे ज्ञान की स्वामिनि! आसुरीय एवं निन्दनीय भावों को एकदम नष्ट कर दो, मायारूप से घेर लेने वाले आसुरी जीवन की प्रजामात्र को दूर कर दो। अय जीवन वल की अधिष्ठात्रि ! इन मानवी जीवनों में से खोई हुई भाव—भूमियों को पुनः प्राप्त कराओ और सभी विषधाराओं को सदा के लिये वहा दो—निकाल दो"

: ११० :

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ ऋ० ६-६१-१०

"और हमारे जीवन परिवार की सातों वहिनों द्वारा सेवन-प्रेम-की जाने पर सरस्वती देवी हमारी तमाम प्यारी वस्तुओं में बढ़ कर प्यारी तथा पूजने योग्य हो जाती हैं"

: १११ :

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः ।
सरस्वन्तं हवामहे ॥ ऋ० ७-९६-४

"हम स्वयं अगुआ होते हुए, पुत्र आदि की कामना करते हुए और सुदृढ़ दानी बनते हुए, परम प्रगति परायण सारस्वत—विद्यावल—की चाहना करते हैं"

: ११२ :

सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आधे-ह्यस्मे ॥

ऋ० १०-१७-८

"अय सरस्वति ! देवि ! तू जो अपनी धारणा वृत्तियों एवं पालना शक्तियों के साथ ज्ञान—रथ पर सवार होकर आनन्द मनाती हुई विचरण

करती है, सो तू आज हमारे इस जीवन आकाश में विराजमान होकर सबको भी आनन्दित कर और हम सब में निर्दोष तेज का संचार कर"

: ११३ :

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः॥

अथर्व० ७-६८

"अय सरस्वति ! अय दिव्य-दीप्तियो की स्वामिनि ! अय देवि ! अपने तमाम दिव्य-तेजस्वि-व्रतों और धामों के द्वारा हमारे आवाहनों का सेवन करो और हमारे जीवन की समस्त प्रजा-बुद्धि शक्तियों में परिरमण करो"

वाग्भावना

: ११४ :

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥

ऋ० १-११२-२४

"अय दर्शनीय वीर अश्वि देवो ! हम में कर्म प्रधान वाणी एवं बुद्धि का संचार करो; हम निष्कपट उन्नति के लिये ही आप सब का आवाहन करते हैं और चाहते हैं कि आप हमारे जीवन बल की परिपूर्णता में परम सहायक हों"

: ११५ :

यां पूषन् ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु॥ ऋ० ६-५३-८

"अय संसार का भरण-पोषण करने वाले पूषन् देव ! अपनी व्यापक दया-कृपा के लिये जिस ब्रह्मबोधिनी वाणी को हस्तामलक की भांति धारण करते हो, उस विद्या-वाणी—से हमारे समस्त हृदय पटल को लिख दो—उसे हृदय पटल के चारों ओर फैलादो"

: ११६ :

पावमानी—र्दधन्तु न इमं लोक—मथो अमुम् ।
कामान् समर्धयन्तु नो देवी-र्देवैः समाहृताः ॥

सामः उ० ५-२-८

"परम पवित्र करने वाली आप की ये दिव्य वाणियें हमारे इस जीवन और पर जीवन, इस लोक एवं परलोक को धारण करने वाली हों । ये परम दिव्य वेदवाणियां दिव्य भावनाओं द्वारा प्रेरित होती हुई हमारी सम्पूर्ण कामनाओं के साधने वाली हों"

: ११७ :

येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥

साम० उ० ५-२-८

"जिस परम पुनीत वेद—वाणी के पुनीत साधन से अनेक दिव्य आत्माएं अपने आपको सदा से पवित्र करती आरही हैं; अय मेरे स्वामिन् ! आपकी वे ही सदुपदेशरूप वेदवाणियें अपने सहस्रधारा वाले पवित्र प्रवाह से हम सबको भी पवित्र कर दें"

: ११८ :

युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि ।
गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥

साम० उ० ९-२-७

"मैं सैकड़ों पदों-पदवियों-के रखने वाली पवित्रतम वेद वाणी का उपयोग करता हूं । मैं हजारों मार्गों-साधनों से सम्पन्न इस वाणी का गान करता हूं और मैं गाने-जपने योग्य वेद वाणी के सारभूत त्रिगुणात्मक ओ३म् का वार-वार गान तथा जप करता हूं"

: ११९ :

इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंसिता ।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥

अथर्व० १९-९-३

"यह जो वेदज्ञान से प्रशंसित हुई-हुई महत्त्वाकांक्षा से युक्त वाग्दे यह सचमुच देवी है; जिस वाग्देवी से इस घोर जीवन का सर्जन-कि ङ्गाता है, उसी वाग्देवी से हम सब का कल्याण हो"

श्रद्धा-भावना

: १२० :

श्रद्ध-याग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ।।

ऋ० १०-१

"श्रद्धा से ही जीवन तेज चेताया जाता है, श्रद्धा-भक्ति से ही जीवन में आहुति दी जाती है। मैं इसी श्रद्धा-भक्ति-देवी को अपने वचनों जीवन-मस्तक पर चढ़ाता हूं"

: १२१ :

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ।। ऋ० १०-१

"हे श्रद्धे ! प्रेम के देने वाले, प्रेम के चाहने वाले, प्रेम के भोजियों प्रेम के यज्ञों में सर्वत्र ही मेरी उन्नति हो—सर्वत्र ही मेरा उत्कर्ष हो"

: १२२ :

यथा देवा असुरेषु श्रद्धा-मुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माक-मुदितं कृधि ।।

ऋ० १०-१

"जिस प्रकार महात्माजन घोर आसुरी वृत्तियों में भी श्रद्धा के भाव कर लेते हैं; उसी प्रकार प्रेम भोजों और प्रेम के यज्ञों में हमारा उदय हो हमारा उत्कर्ष हो"

: १२३ :

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धा हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ।। ऋ० १०-१

"जीवन यज्ञ की साधना करने वाले तथा प्राण जीवन की साधना करने वाले सभी महाजन श्रद्धा देवी का सहयोग चाहते-करते हैं; क्योंकि, हृदय की प्रत्येक तंत्री से श्रद्धा का लाभ होता है और श्रद्धा देवी के सहयोग से आत्मा की परमोत्तम वास भूमि का ज्ञान होता है"

इस लिये—

: १२४ :

श्रद्धां प्रात-र्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥

ऋ० १०-१५१-५

"हम प्रातः उठते ही श्रद्धा देवी का आवाहन करते हैं, दिन भर में श्रद्धा माता का आवाहन करते और सूर्य के निम्न काल में भी श्रद्धा देवी का आवाहन करते हैं—अय श्रद्धे ! हमें इस जीवन में अपने से भर दो"

मातृ-पितृ-भावना ● १०

: १२५ :

ऋतस्य रश्मी-मनुयच्छमाना भद्रं भद्रं क्रतु-मस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्यु-च्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥

ऋ० १-१२३-१३

"अय मानवजीवन की उषे ! हम में नित्य-निरन्तर सुख-शान्ति के देने वाले कर्तव्य कर्मों का संचार करो, कि जिससे कि हम सब-के-सब सत्य की डोरी को थामते हुए ही जीवन यात्रा में अग्रसर हों। आज हम में नव-जीवन का संचार हो, जीवन-धन का संचार हो, और भव्य-भावनाओं का संचार हो"

: १२६ :

पदे पदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत् सूरिभि-र्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥

ऋ० ५-४१-१५

"कदम-कदम पर बुढ़ापा छारहा है, जो अपनी रक्षा वृत्तियों से सशक्त रही अथवा जो मातृ मोह की आधारभूता महती माता है, वह कोमल ह्र वाली एवं कोमल स्वभावा माता अपने सजीव भावों एवं सरल स्वभावों हमारे जीवन.क्षेत्र को सेचने वाली हो"

: १२७ :

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितु-र्बोधयन्ती।
आविवासन्ती युवति-र्मनीषा पितृभ्य आसदने जोहुवाना॥

ऋ० ५-४७

"उक्त मातृ देवी जीवन यज्ञ का प्रयोग करती हुई मानो दिव्य लोक अवतीर्ण हो रही है—वह जीवन शक्ति रूपी पुत्री को सजग करती हुई संसार में प्रवेश कर रही है। वह पालक पितरों द्वारा प्रेरित होती हुई मानव-जगत् को मानो आबाद करती हुई सजग बुद्धि के रूप में ही इस गृहा में प्रवेश कर रही है"

: १२८ :

अश्वावती-र्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सद-मुच्छन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

ऋ० ७-४१

"ये नाना प्रगतियों के रखने वाली, नाना शक्तियों की स्वामिनियां, और वीर पुत्रों को पैदा करने वाली सुसभ्य माता हमारे जीवन गृह को विस्ता देने-आबाद करने वाली हैं। अय माताओ! तुम सब चारों ओर से सुरक्षि होकर अपने स्वाभाविक स्नेह को पूर्ण करती हुई हम सब को सुख-सौभाग से भर दो"

: १२९ :

महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि।
चित्रं रयिं यशसं धे-ह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम्॥

ऋ० ७-७५

"अय प्रकाश की देवि! अय मनुष्य रूप उषे! आज हमें महान् सुवि

स्तुत एवं महत्त्वपूर्ण सौभाग्य के लिये प्रेरित कर और हमारे जीवनों में नाना धनों, नाना यशों और नाना पौरुषों को भर दो"

: १३० :

तां पूष-ञ्छिवतमा-मेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या ३ वपन्ति ।
या न उरू उशती विश्रयाते यस्या-मुशन्तः प्रहराम शेपम ॥

ऋ० १०-८५-३

"अय पालक शक्तियों के स्वामिन् ! मानव संसार में उस कल्याणमयी माता की प्रेरणा करो कि, जिस में मनुष्य की जीवन शक्तियों का उत्तम बीज डाला जाता हो, जो हमें पूर्ण कामना के साथ आश्रय दे सके ; और जिसमें हम सम्पूर्ण जीवन-बल का संचार पा सकें"

: १३१ :

आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सती-स्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्ग-मभि-लोकं नयन्तु ॥

अथर्व० १२-३-२६

"ये मातृ देवियें मानो दिव्यलोक से आगमन करती हैं, सारी पृथ्वी में सम्मिलित होती हैं और समस्त जीवन भूमियों के साथ सहयोग करती हुई उन्नत आकाश गामिनी होती हैं। ये सती—साध्वी—मातृ देवियां अपनी विमल गतियों से शोभा पाती हुई हम सब को स्वर्गीय सुख के उच्चतम पद पर पहुंचाने वाली हों"

: १३२ :

अप्नस्वती-मश्विना वाच-मस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्ये ऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥

ऋ० १-११२-२४

"अय हमारे माता ! और पिता ! हम आप के कर्तव्यनिष्ठ उपदेशों की इच्छा रखते हैं; अय दर्शनीय एवं वीर पितरो ! हमारी बुद्धि को कर्तव्य की ओर लगाने में यत्नशील रहो; हम बालक निर्दोष उन्नति के लिये ही आप की गोद में आते हैं हमारे जीवन की परिपूर्णता में निरन्तर प्रगति शील रहो"

: १३३ :

इदं द्यावापृथिवी सत्य-मस्तु पित-र्मात-र्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवना-मवसे अवोभि-र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥

ऋ० १-१८५-११

"अय माता ! और पिता ! तुम जो पृथ्वी एवं आकाश की उपमा रखते हो, सत्य-परमसत्य-के अनुगामी होवो, तुम दिव्य तेजों के उन्नत करने वाले होवो और हम आपकी रक्षा-दीक्षा में रहते हुए जीवनबल, जीवनसंग्राम और प्राणिमात्र के जानने-पहचानने में समर्थ हो सकें"

: १३४ :

इयं मनीषा इय-मश्विना गी-रिमां सुवृक्ति वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयू-न्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

ऋ० ७-७१-६

"अय वीर भावों के देने वाले माता ! यही तो वह बुद्धि है, यही तो वह वाणी है और यही तो वह उपमा है कि जिस के साथ आप की समानता होती है। ये ही सद्भाव आपकी ओर अनुसरण करते हैं; आओ ! आप सब अपने सुख-सौभाग्यों से हमें भाग्यशाली बनाओ-बनाते रहो"

: १३५ :

सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्य-मनाधृष्टं रक्षस्विना ।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि ॥

ऋ० ८-२२-१८

"अय मात-पिता ! अय रक्षा-दीक्षा के अधिकारियो ! अय जीवन-संग्राम की वास भूमियों ! आप दोनों का सहयोग पाकर हम इस जीवन-गृह में सुन्दरता से प्रगति करने वाले, सुन्दर पौरुष को रखने वाले, सुन्दर ढाल का काम देने वाले और कभी न पराजित होने वाले सभी सद्गुणों, सद्भावों, सद्विचारों की स्थापना करने वाले बनें"

: १३६ :

मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यै-र्यात-मश्विना ॥ ऋ० ८-३५-१३

"अय मित्र और वरुण शक्तियों के रखने वाले, धर्म का पालन करने वाले, प्राण जीवन के स्वामी रूप माता और पिता ! अपने पुत्रों की पुकार को सुनो और सच्चे प्रेम, प्रकाश और उज्ज्वल भावों के साथ हम पुत्रों को प्राप्त होवो"

: १३७ :

ब्रह्मजिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधत-ममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ।।

ऋ० ८-३५-१६

"अय माता-पिता ! ब्रह्मज्ञान को पूर्ण करो, बुद्धितत्वों को पूर्ण करो, तमाम दोषों दुर्गुणों-राक्षसीभावों को मार भगा के शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, सामाजिक, एवं राष्ट्रीय स्वास्थ्य का सम्पादन करो । इस प्रकार पूर्ण प्रेम, पूर्ण प्रकाश और पूर्णज्ञान के साथ जीवन को उन्नत करते हुए हम पुत्रों का पालन करने वाले बनो"

: १३८ :

द्वे सृती अश्रृणवं पितृणा-महं देवाना-मुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्व-मेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ।।

ऋ० १०-८८-१५

"मैं पितरों की जीवन-यात्रा के दो ही मार्ग सुनता हूँ, इन में से एक तो अमरलोक का अनुयायी है और दूसरा मृत्यु लोक का अनुयायी; इन्हीं दोनों से इस समस्त जीवन-जगत् का आवागमन होता है और ये ही दोनों हमारे मातृ-मार्ग एवं पितृ-मार्ग के अन्तरे हैं"

: १३९ :

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रिया-स्ता-नुपह्वये ।।

अथर्व ९-५-३०

"मैं तो पिता, पुत्र, पौत्र, पितामह, पत्नी, माता और मातामही आदि में से जो भी अपने प्रेमी-स्नेही हैं; उन सब का आवाहन करता हूं उन सब के लिये सद्भावों का प्रकाश करता हूं"

: १४० :

त्वन्नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावा पृथिवी प्रावतं नः ॥

ऋ० १-३१-

"हे परम प्रकाश देव ! स्तुति सिद्ध आप, जीवन-धन के सेवन करने के लिये हमें पूर्ण यशस्वी और पूर्ण कर्त्तव्यनिष्ठ बना दो; हम नित्य नवीन एवं दिव्य-धर्म की सहायता से ऋद्धियों और सिद्धियों के स्वामी बनें—पृथ्वी एवं आकाश. माता एवं पिता हमारी रक्षा करने वाले हों"

: १४१ :

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोम-मपिबद् विष्णुना सुतं यथा-वशत् । स ईं ममाद महि कर्म कर्त्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य-मिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥

ऋ० २-२२-१

"महान् वीर एवं महा महिम आत्मा नाम, रूप, आयु इन तीन नियमों वाली जीवन सृष्टियों में, परम व्यापक विष्णु की व्यवस्था से सम्पादित हुए प्रकृति मिश्रित जीवनैश्वर्य का भोग करता है—जैसा कि वह सदा से भोगता आ रहा है । वह प्रभु इस आत्मा को महान् कर्त्तव्य—धर्म की साधना के लिये जीवनैश्वर्य से आनन्दित करता है और वह आत्मा भी इस महान् व्यापक प्रभु का सहयोग पाता है । वह महान् देव है, वह सत्य है और वह परमानन्द है; इसीलिये इस दिव्य, सत्य, एवं इन्द्रिय स्वामी मुझ आत्मा को महान् धर्म में प्रेरित करता है"

: १४१ :

तन्न-स्तुरीप-मध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥

ऋ० ३-४-९

"हे जीवन जगत् को पुष्ट करने वाले ; हे निर्मातृ देव ! आप हमारे

चौथे परम पद को ध्वनित करें कि जिससे प्रत्येक युक्त ज्ञानी दिव्यभावनाओं से प्रेरित होता हुआ वीरात्मा, धर्मात्मा और ज्ञानात्मा के रूप में जीवन निर्माण किया करे"

: १४२ :

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात् सत्य-मुपैमि ।। यजुः १-५

"हे परमाग्नि देव ! हे व्रतपते ! मैं आज प्रतिज्ञा करता हूं कि, भावी जीवन में नियम धर्म का आचरण करूंगा; मैं ऐसा करने में समर्थ हो सकूं; आप मुझे मेरे धर्माचरण-व्रत में सफल काम करें—यह मैं असत्य से निकल करु सत्य की ओर अग्रसर होता हूं"

: १४३ :

जातः परेण धर्मणा यत् सवृद्धिः सहाभुवः ।
पिता यत् कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ।।
साम० पू० १-६-७०

"स्वामिन् ! आप भी तो परम सत्यरूप परम धर्म की सहायता से ही साक्षात् किये जाते हैं । इस लिये आप प्रत्येक दर्शक-भक्त के पिता हैं, श्रद्धा उसकी माता है और उसका मन ही उसके अन्तर्भावों को विकसित करने वाला कवि है"

: १४४ :

ईशाना वार्याणां क्षयन्ती-श्चर्षणीनाम् ।
अपो याचामि भेषजम् ।। अथर्व० १-५-४

"मैं वरण करने योग्य तमाम वस्तुतत्त्वों पर प्रभुता रखने वाली और प्राणिमात्र की अधिष्ठातृ देवता स्वरूप कर्म भूमि—धर्म भूमि—की चाहना रखता हूं; क्योंकि यही एक मेरे जीवन-जगत् की परम ओषधि है"

: १४५ :

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ।।
अथर्व० १-३३-२

"जिन के मध्य में सत्य एवं असत्य की जांच करते हुए वरुणात्मा व्यापक होता है, जो आत्माग्नि को केन्द्र रूप से स्थापित करती हैं, वे कर्म-वृत्तियें सब के लिये सुख-शान्ति का सन्देश लाने वाली हों"

: १४६ :

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ।।
अथर्व० ७-६-३

"हे पूषन् ! हे पालक ! आपके धर्म व्रत में रहते हुए हम कभी भी घाटा उठाने वाले न हों; हम आपका गान करते हुए ही धर्म यात्रा में प्रवृत्त हों"

: १४७ :

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
णो शिक्षा अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योति-रशीमहि ।।
अथर्व० २०-७६-१

"हे परमेन्द्रदेव ! पिता जैसे पुत्रों में कर्त्तव्य बुद्धि को उत्तेजित करता है, ऐसे ही आप भी हममें कर्त्तव्य निष्ठा-धर्म-परायणता भर दें। परमदेव ! जीवन यात्रा में प्रवृत्त होने के लिये वह शिक्षा-बुद्धि दो कि हम सब इसमें अन्तर्ज्योति को प्राप्त कर सकें"

सत्य-भावना

१३

: १४८ :

युवोर्ऋतं रोदसी सत्य-मस्तु महे षु णः सुवितःय प्रभूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ।।
ऋ० ३-५४-३

"अय पृथ्वी और आकाश में गमन प्राप्त करने वालों ! तुम्हारा सत्य वास्तविक तथा परम सत्य होना चाहिए, तुम्हें मानव जीवन के महत्त्वपूर्ण विस्तार के लिये सत्य का अनुगामी होना चाहिए। हे परमात्मन् ! इस दिव्य यत्न के लिये नमस्कार हो, मातृशक्ति के लिए नमस्कार हो; मैं पूर्ण प्रयत्न के साथ इस सत्य रूपी महान् रत्न को प्राप्त होता हूं"

: १४६ :

यो मा पाकेन मनसा चरन्त-मभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्न-स्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥

ऋ० ७।१०४।८

"परिपक्व-निश्चित मन से विचरण करते हुए मुझ को, जो कोई भी असत्यमिथ्या वचनों से अभिवादन करता है; हे परमेन्द्र देव! ऐसा मिथ्यावादी मनुष्य मुट्ठी में दबाये पानी की भांति तरल हो उठे, अभिभूत हो उठे"

: १५० :

यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवां अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥

"हाँ, यदि मैं मिथ्याभाव का रखने वाला हूं, या गुरुजनों के सन्मुख मिथ्याप्रवाद करता रहता हूं; तब हे तेजो रूप परमात्मन् ! हे नित्यज्ञानिन् ! मुझ एक के लिए, हम सब का ही हरण क्यों हो; मिथ्यावादी को ही मृत्यु की फांस में डालिये"

: १५१ :

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृंग-मुर्विया वि पप्रथे ।
ऋतं सासाह महि चित् पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं संख्या मुनोचतम् ॥

ऋ० ८-८६-५

"सूर्यदेव सत्य के सहारे ही बढ़ता आ रहा हैं, पृथ्वी सत्य के आधार पर ही इतनी उन्नत, इतनी विस्तृत-हुई है; सत्य की मदद से भारी शक्तियों का सहन किया जा सकता है—हे सखा रूप अश्वियो ! हमें सत्य से-सन्मार्ग से कभी भी विमुख न होने देना ।"

: १५२ :

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इद-माहमनृतात् सत्य-मुपैमि ॥ यजु० १-५

"हे अग्ने ! हे व्रतपते ! मैं व्रत का आचारण करूंगा—मैं सत्य का पालन करूंगा; ऐसा कर सकूं यही भावना है; मुझे इस योग्य कीजिये-सामर्थ्य दीजिये; यह मैं असत्य से हटकर सत्य की ओर अग्रसर होता हूं ।"

: १५३ :

इमे जीवा विमृतै-रावव्रत्र-न्नभूद् भद्रा देवहूति-र्नो अद्य ।
प्राञ्चो आगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथ-मा वदेम ।।

अथर्व० १२-२-२

"हे परमेश्वर ! हम ये जीवित-जागृत मनुष्य मृतकों-झूठे आलसियों से अलग होकर जीवन यात्रा में प्रवृत्त हुए हैं, दिव्य वेदवाणी आज हमारे लिये सुखरूप हुई है; इस लिये शक्ति दो कि हम सब कर्त्तव्यों कर्मों के अनुष्ठान करने, सुख भोग करने एवं शान्ति पाने के लिये अग्रसर होते हुए बढ़ें और इस प्रकार वीरभावों को धारण करते हुए सत्य-परमसत्य के भागी बनें।"

: १५४ :

मृत्यो: पदं योपयन्त एत-द्राघीय आयु: प्रतरं दधाना: ।
आसीना मृत्युं नुदता सध-स्थेऽथ जीवासो विदथ-मा वदेम ।।

अथर्व० १२-२-३०

"मृत्यु के पंजों को शिथिल करते हुए, दीर्घतम आयु को धारण करते हुए आगे बढ़ें; मौत को मानो परे ढकेलते हुए परमपद में सुखपूर्वक विराजमान हों; और इस प्रकार उस सत्य-परमसत्य को जीते जागते जानने में समर्थ हों।

पावित्र्य-भावना

१३

: १५५ :

आपो अस्मान् मातर: शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्व: पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवी-रुदिदाभ्य: शुचि-रापूत एमि ।।

ऋ० १०-१७-१०

"माता की भांति संवर्धन करने वाली ये धर्मप्रवृत्तियें हमें नित्य-निरंतर पवित्र बनाये रखें; अपने परम पवित्र स्नेह से पावन करने वाली मातायें अपरिमित प्रेम से पवित्र करती रहें—ये ही वे दिव्य मातायें हैं जो, सम्पूर्ण पापपंक को सदैव प्रवाहित करती रहती है; इन्हीं देवियों की कृपा से मैं इधर-उधर चारों ओर से पवित्र होकर विचरण करता रहता हूं ।"

: १५६ :

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ।।

यजु० १९-३९

"सभी दिव्य जन मुझे पवित्र करें—सच्चे हृदय और सत्य वृत्ति से मुझे पवित्र करें। संसार के सभी प्राणी मुझे पवित्र करने वाले हों; अय सर्व-स्वामिन् ! आप भी मुझे पवित्र करें।"

: १५७ :

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्वाभूतानि पवमानः पुनातु मा ।। अथर्व० ६-१९-१

"विद्वज्जन मेरे जीवन को पवित्र करें,मानवधर्म के ज्ञानी विद्या-बुद्धि द्वारा मुझे पवित्र करें, संसार के सभी प्राणी मुझे पवित्र करें—हे पवित्रता के परमेश्वर ! मुझे पवित्र कर।"

: १५८ :

पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथोअरिष्ट तातये ।। अथर्व० ६-१९-२

"सब को पवित्र करने वाला परमेश्वर कर्तव्य-पालन के लिये, बुद्धि-वैभव के लिये एवं जीवन-निर्माण के लिये मुझे पवित्र करे; और सर्वथा निर्दोष, नीरोग एवं सम्पूर्णता के लिये मुझे पवित्र करे।"

: १५९ :

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
अस्मान् पुनीहि चक्षसे ।। अथर्व० ६-१९-३

"हे देव ! हे निर्माण करने वाले ! पवित्रात्मक और ऐश्वर्यात्मक दोनों गुण-धर्मों से हमें पवित्र करो-विश्वदर्शन के लिये हमें पवित्र करो।"

: १३० :

यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपरिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
सोम-स्तानि स्वधया नः पुनातु ।। अथर्व० ६-९६-३

"जो कोई भी पाप हमने मन से, बुद्धि से अथवा नेत्रों से जागते या सो
हुए भी किया है—हमारे उन सभी पापों को ऐश्वर्यस्वामी परमेश्वर अप
धारणा-शक्ति से पवित्र करे—शुद्ध करे।"

: १६१ :

सम्मले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम्।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्रण आयूंषि तारषित्॥

अथर्व० १४-२-६

"हम भीतरी मैल को तो बहा दें विद्या-नदी में, और बाहरी मलीन
को धो दें पानी की नदी में, इस प्रकार हम विशुद्ध और स्वर्गीय हो जा
और हमारी यही भावना जीवन-आयु-को पार तक पहुंचाने वाली हो।"

: १६२ :

त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः
रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे॥ ऋ० ६-१६-

"हे जन्मज्ञानिन्! हे ज्ञान-स्वामिन्! पाप करने वाले पापी और पाप-
इन दोनों से बचाओ-इन दोनों से हमारी रक्षा करो।"

: १६३ :

यो मृडयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः।
अनु व्रता-न्यदिते-ऋंधन्तोयू यं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

ऋ० ७-८७

"जो वरुण देव पाप करने वाले पर भी दया करता-कर सकता है, ह
तो उस महान् दयालु के लिये सदैव पाप रहित ही होंगे। हम तो प्रकृति मा
के अटल नियमों का पालन करते हुए ही अग्रसर होंगे—अय गुरुजनो! आ
सब मिलकर शुभशीर्वादों से हमारे सहायक हों।"

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या-श्चरामसि ।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मा-देनसो देव रीरिषः ।।

ऋ० ७-८९-५

"हे वरुण देव ! हम मानव देहधारी जो यह किसी सज्जन-महात्मा के साथ अभिद्रोह का आचार-काम-कर बैठते हैं अथवा अज्ञानता से आपके धर्मोपदेश का अनादर कर गुजरते हैं; सो इस पाप कर्म से हमारे जीवन का सर्वनाश न हो-हमें अनुताप करने का समय मिलता रहे।"

: १६५ :

मा न एकस्मि-न्नागसि मा द्वयो-रुत त्रिषु ।
वधीर्मा शूर भूरिषु ।। ऋ० ८-४५-३४

"हे वीरात्मन् ! हे वरुण देव ! किसी एक पाप में मेरा सर्वथा जीवन नाश न हो, किन्हीं दो पापों में मेरे जीवन का अन्त न हो, किन्हीं तीन पापों में मेरा जीवन-दीप बुझ न जाये; और अनेक पापों में भी मेरा जीवन समाप्त न होने पाये—मेरा सम्पूर्ण जीवन पापरहित कर्त्तव्य कर्मों के पालन में ही व्यतीत होता रहे।"

: १६६ t

इदमापः प्रवहत यत् किं च दुरितं मयि ।
यद् वाह-मभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ।।

ऋ० १०-९-८

"यह जो थोड़ा मुझ में पाप का मैल है, मेरी ये कर्म-प्रवृतियाँ, इसे सदा के लिये बहा ले जायें; अथवा जो मैं किसी से द्रोह करूँ, या जो मैं किसी से दुर्वचन कहूं अथवा जो मैं असत्य का आचरण करूं—उस सब को भी ये ही धारणावृत्तियें नष्ट करें।"

: १६७ :

यदाशसा निःशसाभिशसोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
अग्नि-र्विश्वा-न्यप दुष्कृता-न्यजुष्टा-न्यारे अस्मद्दधातु ।।

ऋ० १०-१६४-३

"हम से यदि इच्छा पूर्वक, अनिच्छापूर्वक, अथवा किसी कारण विशे से, जागते हुए या सोते हुए भी किसी पाप की संभावना हो तो; परम प्रकाश देव परमात्मा ऐसे तमाम असेवनीय दुष्कर्मों को हम से दूर-अति दूर-रखने की कृपा करे।"

: १६८ :

यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वय-मिदं तदवयजामहे स्वाहा॥

यजु० ३-४५

"जो कोई भी पाप ग्राम में, घरों में, जंगल में, सभा में अथवा अपने ही इन्द्रिय-भोग में हम से होता, हो जाता या होने की संभावना है : हम उस समस्त पाप-भावना को ही अनादृत करते हैं—अपमानित करते हैं—हमारा कल्याण हो।"

: १६९ :

यो नः पाप्मन् न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम्।
पथा-मनु व्यावर्त्तनेऽन्यं पाप्मानु पद्यताम्॥

अथर्व० ६-२६-२

"अय पाप! अय पापात्मन्! यदि तू हमें नहीं छोड़ता, तो ले, हम ही तेरा परित्याग करते हैं। तू जा और जीवन-मार्ग के हेर-फेर में किसी और का पीछा कर।"

: १७० :

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि सञ्चर-गृहेषु गोषु मे मनः॥

अथर्व० ६-४५-१

"अय मन के पाप! तू दूर भाग जा, क्या निन्दनीय पदार्थों की प्रशंसा करता है; मुझ से दूर हो, मैं तुझे नहीं चाहता, तू वृक्षों एवं वनों में विचरण कर, और अय मन! तू अपने जीवन-गृह में और इन्द्रियों के परिवार में चरितार्थ हो।"

: १७१ :

यद्विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम्।
यूयं नस्तस्मा-न्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥

अथर्व० ६-११५-१

"हे परमप्रेमास्पद गुरुजनो ! हम विद्वान् हों या मूर्ख-हम में से कोई भी यदि किसी पाप-कर्म का आचरण करता है, तब आप सब मिलकर हमें उस पाप-कर्म से बचावें।"

: १७२ :

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून्।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कत्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥

अथर्व० १०-१-३२

"जैसे सूर्य अन्धकार को चीर कर बाहिर आ जाता है, जैसे सूर्य रात को मिटा कर प्रभात-समय के चिह्नों को प्रगट कर देता है; इसी तरह मैं हिंसा-वृत्ति के बढ़ाने वाले किये या किये जाने वाले सभी पापों-दुर्विचारों-को त्यागता हूँ मैं इन पापों को ऐसे ही उड़ाता हूं जैसे हाथी धूल को चारों ओर उड़ा देता है।"

: १७३ :

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंस-मा वृक्षि देवाः ॥

ऋ० १-२७-१३

"बड़ों के लिये नमस्कार हो, छोटों के लिये आदर हो, मध्यमों-युवकों-के लिये मान हो और सब के लिये भला हो; यदि हो सके तो, सभी गुरु-जनों की सेवा करें; हे गुरुजनों ! आशीर्वाद दो कि बड़ाई का नष्ट करने वाला कभी न बनूं।"

: १७४ :

देवानां भद्रा सुमति-ऋजूयतां देवानां राति-रभि नो गि वर्त्तताम ।
देवानां सख्य-मुपसे-दिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ।। ऋ० १-८९-२

"सरल जीवन के चाहने वाले गुरुजनों की कल्याण साधनी बुद्धि और वृद्धमहात्माओं की असीस हमें निरन्तर मिलती रहे। महापुरुषों का सत्संग हमें सदैव प्राप्त होता रहे और ये सभी महाजन हमारे जीवन की भी वृद्धि के लिये हमें चिरंजीवी करते-कहते-रहें।"

: १७५ :

विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वा-नित्थापरो अचेताः ।
नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ।। ऋ० १-१२०-२

"न जानने वाला इन जानकार स्त्री-पुरुषों से ही दुरूह विषयों का ज्ञान प्राप्त किया करे और दूसरा अनजान भी इन्हीं से सलाह लिया करे। साधारण मनुष्य की जीवन-रक्षा के लिये ये दोनों मानों किले का काम देते हैं।"

इसी लिये :—

: १७६ :

ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वसा मन्य वोचेत-मद्य ।
प्रार्च-द्दयमानो युवाकुः ।। ऋ० १-१२०-३

"आप जैसे जानकार विद्वानों का ही आवाहन हुआ करता है, ऐसे ही विद्वान् स्त्री-पुरुष हमारे लिये मन्तव्य ज्ञान का उपदेश किया करते हैं, कोई भी प्रगतिशील एवं लगन रखने वाला मनुष्य इन दोनों की सेवा-परिचर्या-करना अपना कर्त्तव्य समझ सकता है।"

: १७७ :

ऊती देवानां वय-मिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्नि-मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ।।

ऋ० १-१३६-७

"इद्रात्मा के रखने वाले-आत्म देह धारी-महा प्राणों की सहायता पाकर अपने यश से यशस्वी बनते हुए हम सब उक्त गुरुजनो की उन्नति से

ही अपनी उन्नति मानते हैं। आत्माग्नि, मित्रात्मा और वरुणात्मा सुख-शान्ति के बढ़ाने वाले हों और उस सुख-शान्ति को हम सब प्राप्त करने वाले हों।"

: १७८ :

अयामि ते नम उक्तिं जुषस्व ऋताव-स्तुभ्यं चेतते सहस्वः।
विद्वां आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हि-रूतये यजत्र॥

ऋ० ३-१४-२

"हे सत्याचारपरायण! हे साहसिन्! हे पूज्य महात्मन्! मैं आप जैसे सचेत करने वाले महापुरुष के लिये नमस्कार करता हूं-आप मेरे इस आदर भाव को स्वीकार करें; एक विद्वान् ही विद्वानों की सभा में शोभा पाता है, आप विद्वान् हैं, अतः आइये, सब की रक्षा-वृद्धि-के लिये इस खुले समाज में अपना आसन ग्रहन कीजिये।"

: १७९ :

येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा।
दिवि रुक्म इवोपरि॥ ऋ० ५-६१-१२

"जिन महापुरुषों की उज्ज्वल कीर्ति से पृथ्वी एवं आकाश ध्वनित होने लगते हैं, जो महापुरुष आकाश में सूर्य की भांति अपने जीवन-रथों में देदीप्यामान-शोभायमान होने लगते हैं।"

: १८० :

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः।
आ यज्ञियासो ववृत्तन॥ ऋ० ५-६१-१६

"वे हिंसा वृत्तियों को नष्ट करने वाले पूर्णप्रज्ञ एवं पूजनीय महात्माजन हमारी कामनाओं की केन्द्रीभूत सुख-सम्पदों के सम्पादन करने वाले हों।"

: १८१ :

स नो बोधि पुर एता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृ-द्विदानः।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठा-स्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम्॥

ऋ० ६-२१-१२

"हे महात्मन् ! हे सन्मार्गप्रवर्त्तक ! हे प्रज्ञ ! दुर्गम एवं सुगम-सब प्रकार के जीवन मार्गों में हमें सचेत करते रहो; तुम्हारे जो कहीं न थकने वाले सन्मार्ग पर ले जाने वाले अनेक सदुपदेश-सत्कर्म-हैं; उन्हीं की मदद से हमारे इस जीवन बल का वहन हो-उन्हीं के द्वारा हमें आत्म-भोजन की प्राप्ति हो।

: १८२ :

ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

ऋ० ७-२२-९

"हे परमैश्वर्य के स्वामिन् ! जो मन्त्रार्थ के जानने वाले महा प्रज्ञमुनि-जन पूर्वजन्मों में और जो नूतन जन्मों में कल्याण करने वाले सदुपदेशों को सर्वत्र फैलाते रहते हैं, वे सब हम से परम स्नेह रखने वाले हों और हे सत्पुरुषो ! आप सब भी मिल कर अपनी शुभवाणियों से निरन्तर हमारा कल्याण करते रहें।"

: १८३ :

ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः ॥

ऋ० ७-६६-१३

"जो सज्जन सत्य के अनुयायी हैं, जो सत्य द्वारा ही विकसित होते हैं; जो सत्य के सहारे उन्नत होते हैं और जो असत्य के घोर विरोधी हैं :— हम में से जितने भी समझदार मनुष्य हैं; वे सब उन्हीं-आप्त महात्माओं के आश्रय-छाया-रूप सदुपदेश मार्ग में विचरण करने वाले हों।

: १८४ :

यत् सिन्धौ यदसिक्न्यां यत् समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।
यत् पर्वतेषु भेषजम् ॥

ऋ० ८-२०-२५

"अय प्राणविद्या के जानने वालो ! अय विशाल हृदयों के रखने वाले शारीरज्ञानियो ! जो कुछ भी औषध रूप उपकारक वस्तु अन्तरिक्ष में पाई जाती हो, जो कुछ भी लाभदायक पदार्थ नदी, नालों, समुद्रों और पर्वतों में पाया जाता हो।"

: १८५ :

विश्वं पश्यन्तो विभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्त्ता विह्रुतं पुनः ॥

ऋ० ८-२०-२६

"उन सब को देखते-जानते-पहचानते-हुए हमारे शरीरों पर अनुभव करो, और फिर हमें भी बताओ कि किस-किस वस्तु तत्त्व में क्या-क्या गुण-दोष पाये जाते हैं; जिन-से कि प्रत्येक रोगी का रोग शान्त किया जा सके और किसी विकृत अंग को पुनः सजीव किया जा सके।"

: १८६ :

ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत ।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥

ऋ० ८-३०-४

"जो दिव्य महात्माजन इस जगह देखे जाते अथवा जो जहां-तहां मानव-समुदायों में पहुंच कर शुभ साधन कर रहे हैं; वे सब हमारे लिये और हमारे गाय, घोड़े, आदि के लिये सुविस्तृत कल्याण-साधन में सहयोगी हों।"

: १८७ :

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
ये वादः शर्य्यणावति ॥ ऋ० ६-६५-२२

जो सौम्यभाव-सौम्यजन-हमसे दूर रहते हैं, जो हमसे निकट रहते हैं अथवा जो हमारे अपने में ही व्यापक रहते हुए ऐश्वर्य सम्पादन करते रहते हैं।

: १८८ :

य आर्जिकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ ऋ० ९-६५-२३

जो सोम्य जीवन सरल भूमियों, कर्म भूमियों और हीन-भूमियों में व्यतीत हो रहे हैं अथवा जो पांचों प्रचार की जन्म-योनियों में पाये जाते हैं।

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामासुवीर्यम् ।
सुवाना देवास इन्दवः ।। ऋ० ९-६५-

वे सब हमारे जीवनाकाश पर अनन्त वृष्टि के करने वाले, पवित्र क
वाले, सुन्दर वीर्य-बल के सम्पादन करने वाले और स्वर्गीय आनन्द के
वाले हों।

: १९० :

सनेम तत्सुसनिता सनित्वभि-र्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः ।
ब्रह्मद्विषो विश्वगेनो भरेरत तद्देवाना-मवो अद्या वृणीमहे ।।
ऋ० १०-३

"हम जीवन बल के मानो पुत्र और स्वयं जीवन शक्ति के रखने व
भक्त जन, हार्दिक भक्तिभावनाओं की सहायता से पाप-रहित होते हुए स
जीवन के सम्पादन करने वाले हों; ब्रह्मद्वेषी-ज्ञानविरोधी-ही सम्पूर्ण प
वृत्तियों के भरण करने वाले हों; इसलिये हम महापुरुषों-महात्मा-गु
की संगति स्वीकार करते हैं।"

: १९१ :

मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णु-रग्निः ।
ममान्तरिक्ष-मुरुलोक-मस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् ।।
ऋ० १०-१२

"सभी महान् आत्मायें मेरे आदरभाव के अन्तर्गत हों, सभी आत्म
मेरे आदर भाव में सम्मिलित हों; भगवान् भवनाथ एवं मेरी अपनी ज्यो
भी मेरी भव्य-भावनाओं की स्वामिनी हों; मेरे चारों ओर का व्याप
आकाश, मेरे जीवन का आकाश बन जाय और यह बहने वाला शीतल प
भी मेरी इस भव्य भावना में स्थान पाकर पवित्र करने वाला हो जाय।"

: १९२ :

मयि देवा द्रविण-मायजन्तां मय्याशी-रस्तु मयि देवहूतिः ।
दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ।।
ऋ० १०-१२

"ये सब दिव्य आत्मायें मुझ में तेजोमय जीवन धन की आयोजना करें; इनका आशीर्वाद मुझ पर प्रभाव करने वाला हो; इनकी दिव्यवाणी मुझ पर सफल हो। ये जीवन यज्ञ के पवित्र होता। जन पूर्व होताओं की भांति ही भक्ति-भाजन हों और हम इन सबके सत्संग से शारीरिक जीवन से नीरोगी, वीर; मानसिक जीवन से सुज्ञानी एवं आत्मिक जीवनसे सुयोगी हों।"

: १९३ :

मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ॥
एनो मा नि गां कतम-च्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ॥
ऋ० १०-१२८-४

अय विद्वज्जनो ! आप लोग मुझे उपदेश दिया करें कि जिससे मेरी मानस वृत्तियें-हवियें-मेरा ही आयजन किया करें, मेरे मन की आकूतियें (संकल्प) सदैव सत्य हुआ करें, और मैं कभी भी किसी तरह भी पाप की ओर झुकने न पाऊं।"

: १९४ :

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥
यजुः १९-३९

"हे जन्मज्ञानि गुरो ! ये सब दिव्म जन मुझे-मेरे जीवन को पवित्र करें, मेरी अपनी बुद्धि शक्तियें मनन द्वारा पवित्र करें, ये सम्पूर्ण प्राणी मुझे पवित्र करें, और आप भी मुझे पवित्र करें।"

: १९५ :

यद्विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मा-न्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥
अथर्व० ६-११५-१

हममें जो विद्वान् हैं अथवा अविद्वान् हैं—हम में से कोई भी यदि पाप-वृत्ति की ओर प्रेरित हो तो; अय गुरुजनो ! आप सब प्रेमपूर्वक मिल कर हमें उस पापवृत्ति से छुड़ायें—उससे अलग होने में सहायता दें।"

: १९६ :

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्नि-र्मा तत्र नय-त्वग्नि-र्मेधां दधातु मे ॥

अथर्व० १९-४३-१

"ये ब्रह्मज्ञानी ये महापुरुष-अपनी शिक्षा, दीक्षा एवं तपस्या के बल से जिस परम पद को पहुंचते-प्राप्त करते-हैं; परम प्रकाशात्मक परमदेव मुझे वहीं उसी परम धाम-का अनुगामी करे; और वही मुझे सद्बुद्धि का दान देकर मेरे जीवन को चरितार्थ करे।"

अहिंसा भावना

: १९७ :

यन्नून-मश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्म-ण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥

ऋ० ७-६४-१

"मैं जिस मित्र की गति-विधि का अनुसरण करूं और जिसके सन्मार्ग का साथी बनूं, वह पूर्ण रूप से अहिंसक हो और ऐसे हिंसाभाव से रहित प्रिय मित्र के सुख संवर्धन में पूर्ण सहयोग करने वाला बनूं।"

: १९८ :

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरै-र्दशभि-र्वियूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥

ऋ० ५-१०४-१५

मैं इसकी अपेक्षा आज ही मर जाऊं कि, मैं यातुधान-जादूगर बनूं अथवा किसी की आयु-जीवन को तपाने वाला बनूं। हां, वह भी सचमुच अपने दशों वीर पुत्रों-इन्द्रियों से विमुक्त हो जो, मुझे वृथा ही यातुधान, यातुधान, कह कर तंग करता है।'

: १९९ :

यो नः कश्चिद् रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः ।
स्वैः ष एवै-रिरिषीष्ट युर्जनः ।। ऋ० ७-१८-१३

"हे मेरे स्वामिन् ! जो कोई भी मनुष्य अपने राक्षसी स्वभाव के वश होकर मेरी हिंसा करता या करना चाहता है, वह अपनी गतियों-प्रवृत्तियों से स्वयं ही मारा जाता है—फिर मैं किसी की हिंसा क्यों करूं ।"

: २०० :

अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄ-न्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ।।
ऋ० ८-६१-१७

"आज हो या कल प्रत्येक दिन और प्रत्येक समय हे इन्द्रात्मन् ! हिंसा-वृत्तियों से हमारी रक्षा करो। हे सत्य के स्वामिन् ! अपने इन अखण्ड भक्तों का दिन, रात, सांझ या सवेरे—किसी भी समय हिंसाभावों से सुरक्षित रखने की कृपा रक्खो।"

: २०१ :

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ।।
ऋ० १०-२२-१३

"हे अनन्त बलशालिन् ! हे इन्द्रात्मन् ! आप की प्रदान की हुई जिन ज्ञान वृत्तियों—वाणियों से हम गउओं द्वारा प्राप्त किये दूध की भांति जीवन का मानों भोजन प्राप्त करते हैं, हमारी ये ज्ञानवृत्तियें सत्य का अनुसरण करने वाली हों, आप तक पहुँचने-पहुँचाने-वाली हों; वे न तो हिंसनीय ही हों और न किसी की हिंसा करने वाली ही हों।"

: २०२ :

अय-मग्ने जरिता त्वे अभू-दपि सहसः सूनो नह्यान्यदस्त्याप्यम् ।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथ-मस्ति त आरे हिंसानामप दिद्यु मा कृधि ।।
ऋ० १०-१४२-१

"हे परम प्रकाश देव ! हे साहस के पालक ! आप का यह भक्त आपकी ही भक्ति में रत हुआ है, वह जानता है कि, प्राप्त करने आपके बिना दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है, वह यह भी समझता है कि तापों को नष्ट करने वाला केवल आप का ही सुख-शान्त रूप ज्ञान है; लिये स्वामिन् ! हिंसा वृत्ति की इन चमकती ज्वालाओं को हम से दूर दूर-रखिये"

: २०३ :

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥

अथर्व० ७

"अय समस्त संसार के पालन करने वाले ! हमें यह पूर्ण विश्वास कि आपके धर्म व्रत में रहते हुए हम प्राणी न तो कभी हिंसित ही होंगे न कभी हिंसक ही बनेंगे—हम सब आप के भक्त हैं और आप ही के रहेंगे"

: २०४ :

मा मां प्राणो हासीन् मो अपानोऽवहाय परा गाद् ॥

अथर्व० १६

"हे ईश्वर ! मेरा प्राण भी मेरा हिंसन-अनादर-न करे, मेरा प्रश्वास मेरा अनादर करके दूर न हो ।"

: २०५ :

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायु-रन्तरिक्षाद् ।
यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥

अथर्व० १६

"सौर शक्तियें दिन के समय मेरी रक्षा करने वाली हों, आग्नेय शक्ति पृथ्वी द्वारा मेरी रक्षा करने वाली हों, वायवीय शक्तियें अन्तरिक्ष में मेरी रक्षा करने वाली हों, नियम रखने वाली राजशक्तियें मनुष्यों से मेरी रक्षा करने वाली हों और मेरी अपनी विद्या-बुद्धि-प्रत्येक पार्थिव पदार्थ से मेरी रक्षा करने वाली हो ।"

: २०६ :

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् ।
न देव-मभिमातयः ॥ ऋ० १-२५-१४

"मनुष्यों में बड़े-से-बड़े दंभी जिसके साथ दंभ नहीं कर सकते, बड़े-बड़े द्रोही और द्वेषी भी जिसके साथ द्रोह-द्वेष-का आचरण नहीं कर सकते और अभिमानी-से-अभिमानी भी जिस वरुणात्मा के सम्मुख अभिमान नहीं दिखा सकते;

: २०७ :

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ।
अस्माक-मुदरेष्वा ॥ ऋ० १-२५-१५

"अथवा जो मानव-जीवन में व्यापकर जीवन को परम यशस्वी बना देता है—वही वरुण देव हम सब में व्याप्त होकर समस्त द्वेष भावनाओं का नाश करे।"

: २०८ :

त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित् ।
पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ।" ऋ०-१-४२-४

"हे वरुणात्मन् ! आप ऐसे किसी भी कपटी एवं पाप की प्रशंसा करने वाले पापी की शक्ति को उसकी अपनी ही कर्म गतियों से निश्चेष्ट करदो—दबा दो।"

: २०९ :

वधै-र्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥
ऋ० १-९४-९

"हे परम प्रकाशात्मन् । सब से द्वेष भाव रख कर सब की निंदा करने वाले, दुर्बुद्धि अथवा महास्वार्थ परायण मनुष्यों को चाहे फिर वे दूर हों या

समीप उन सब को अपने नियम बंधनों से दूर कीजिये; जीवन यज्ञ में
शील प्रत्येक पुरुषार्थी मनुष्य के सभी दुर्गम मार्गों को सुगम कीजि
स्वामिन् ! आप के प्रेम-पाश में पगे हुए हम भक्तजन द्वेष-भावों से
नहीं जायंगे—यह विश्वास है।"

: २१० :

यो नो अग्ने अररिवां अघायु-ररातीवा मर्चयति द्वयेन।
मन्त्रो गुरुः पुन-रस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः॥

ऋ० १-१४

"हे परमाग्निदेव ! जो पापात्मा हमारे साथ द्वेषी का-सा वर्त्ताव कर
है अथवा जो हम में द्वेष भाव के फैलाने में लगा रहता है या जो कपट
से पेश आता रहता है; आप का दिया हुआ मंत्र ही उस के लिये गुरु स्व
हो और दुभाषिये-पन से बिगड़े हुए उस के जीवन का पुनरुद्धार क
वाला हो।"

: २११ :

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्त-मग्ने माकि-र्नो दुरिताय धायीः॥

ऋ० १-१४

"अय साहस के मूल आधार-परमात्मन् ! अथवा जो चालाक मनु
विद्वान् बनता हुआ अपने इन विद्वेषीय भावों से किसी दूसरे को हानि पहुंचा
हैं; उस से अपने भक्त की रक्षा कर; हे उपास्यदेव ! हमें इस द्वेष
दुर्गति के गढ़े में मत जाने दे।"

: २१२ :

उत मन्ये पितु-रद्रुहो मनो मातु-र्महि स्वतव-स्तद्धवीमभिः।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतु-रुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः॥

ऋ० १-१५

"स्वामिन् ! मैं यह मानता हूं कि माता एवं पिता से किसी प्रकार
द्वेष-द्रोह न करने वाला मन भी आप की भक्ति द्वारा ही अपने बल में मह

होता है। सुवीर्यं से युक्त माता और पिता भी आपकी भक्ति-भावनाओं द्वारा ही अपनी प्रजा-सन्तान के जीवन के अमृत का पान करते हुए अपने जीवनों को विशाल बनाने वाले हों।"

: २१३ :

यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग् दिव्ये-वाशनि-र्जहि ।। ऋ० १-१७६-३

"पांचों प्रकार की जीवन सामग्रियें जिस के वश में हैं; हे मेरे स्वामिन्! वही आप विद्वेषियों के हृदयों में अपना अचूक ज्ञान शस्त्र चलाओ—जैसे मानो दिव्य आकाश में तीर चलाया जा रहा हो।"

: २१४ :

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः।
अस्मभ्य-मस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ।। ऋ० १-१७६-४

"जो आप के आनन्द से अपने आप को सुखी नहीं करता, ऐसे जीवन-ऐश्वर्य हीन दुर्घट एवं दुरात्मा पर भी अपना वही शस्त्र चलाओ; भगवन्! उस की इस चोट से पैदा होने वाली शिक्षा हमारे लाभ उठाने के लिए हो और हम उस शिक्षा को प्राप्त करके और भी ज्ञानी हों।"

: २१५ :

त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽवयासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमु-ग्ध्यस्मत् ।।
ऋ० ४-१-४

"हे परमपूज्य! हे प्रकाश स्वरूप! हे परम प्रकाश देव! मृत्यु रूप न्याय दंड के जानने वाले आप, उस के अनादर से हमें सुरक्षित करें; हम में विकास पाने वाले सम्पूर्ण द्वेषों-द्वेषभावों का सदा के लिये नाश करें।"

: २१६ :

अद्वेषो नो मरुतो गातु-मेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत्।
विष्णो-र्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ।।
ऋ० ५-८७-८

"अथ द्वेष भावों को निरन्तर दूर रखने वाले और जीवन संग्राम के वीर सिपाहियो ! तुम ही हमारी जीवन यात्रा के अगुआ बनो; हमारी पुकारों मांगों को ध्यान से सुनो; परम परमेश्वर के सन्मार्ग का अनुगमन करते हुए हमारे कर्मों द्वारा हमारा सुधार करो और हम में फैलने वाले द्वेष भावों का नाश करो।"

: २१७ :

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः। वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नॄन् द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम-ता तरेम-तवावसा तरेम॥

ऋ० ६-१४-

"हे लोक परलोक के प्रकाश करने वाले महा मित्र ! हे देवाधिदेव परमात्मन् ! सर्वत्र फैलने वाली अपनी अपार महिमा को प्राप्त कराओ और दैवी गुणों के रखने वाले मनस्वी मनुष्यों पर सन्मति का विकास करो; हमें योग्यता प्रदान हो कि हम मनुष्य मात्र को द्वेष, दुःख, दरिद्र और पाप आदि से पार करते हुए स्वयं भी इन से पार हों, अवश्य ही पार हों और आप की कृपा—सहायता—से पार हों।"

: २१८ :

यत् किञ्चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मा-देनसो देव रीरिषः॥

ऋ० ७-८९-

"हे वरुण देव ! दैवी जनों में साधारण मनुष्य जो यह थोड़ा-बहुत अभिद्रोह-अभिद्वेष-का भाव रखते हैं और अज्ञान के वश होकर जो हम आप के बताये सद्धर्म मार्ग से विमुख हो जाते हैं; इस द्वेष एवं अधर्म रूपी पाप से हमारी रक्षा हो-इस के बदले में हमारे जीवनों का सर्वनाश न हो।"

: २१९ :

तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम्।
अग्ने घ्नन्त-मप द्विषः॥ ऋ० ८-४३-

"हे परमाग्नि देव ! हम इसी लिये पूर्ण प्रज्ञ, भक्ति भावों के ग्रह

करने वाले और सम्पूर्ण द्वेष भावों के नष्ट करने वाले आप का स्मरण करते हैं—आप का आवाहन करते हैं।"

: २२१ :

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि।
प्रचेता न आंगिरसो द्विषतां पात्वंहसः॥

ऋ० १०-१६४-४

हे इन्द्र देव! हे वेदपते! अपनी अज्ञानता-मूर्खता-से हम जो भी द्रोह अथवा द्वेष का आरचण करते हैं; उस द्वेष एवं द्रोह रूपी पाप से आप एक सच्चे तत्त्वज्ञानी की भांति सुरक्षित करते हैं—बचाते हैं।"

: २२२ :

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

यजुः ३६-१८

मैं जीर्णावस्था के लिये भी दृढ़ता वाला बनूं, मुझे संसार के सभी प्राणी मित्रता भरे नेत्रों से देखा करें, मैं भी संसार के सभी प्राणियों को प्रेम भरी आँखों से देखने वाला बनूं—आओ, हम सब आपस में मित्रों की भाँति देखें, सुनें और बर्त्ताव करें।"

: २२३ :

यो ३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म-स्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व।
आ वयं प्याशिषीमहि गोभि-रश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन॥

अथर्व० ७-८१-५

"हे चन्द्रात्मन्! जो हम से द्वेष रखता अथवा जिससे हम द्वेष रखते हैं, उसे भी तू प्राण-जीवन दे—वह भी फले-फूले और हम भी फलें फूलें। हम सब गाय, बैल, घोड़ा, पुत्र, पौत्र, पशु, घर एवं धन आदि से भर पूर हों—सब का भला हो और हमारा भी भला हो।"

: २२४ :

असम्बाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वत: प्रवत: समं बहु।
नानावीर्या ओषधी-र्या विभर्ति पृथिवी न: प्रथतां राध्यतां न:

अथर्व० १२-

"जिस भूमि पर के रहने वाले मनुष्यों में ऊंच, नीच, किंवा समता विषय में असंबोध-अद्वेष-भाव है; जो नाना प्रकार के वीर्यों, बलों, ओषधियों का भरण-पोषण करती रहती है; वही मातृभूमि हमें फ़ैलने सहायक हो—हमारे प्रेम-प्रदर्शन में सहायक हो।"

: २२५ :

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्यं॥

अथर्व० १९-

"अय सब संसार के भरण-पोषण, और संहार करने वाले ! मेरे दिव्यज्ञानियों में प्रेम का भाव हो, मेरे लिये वीर पुरुषों में प्रेम का भाव मेरे लिये प्रत्येक देखने वाले के हृदय में प्रेम का भाव हो—चाहे फिर शूद्र हो अथवा वैश्य ही क्यों न हो।"

: २२६ :

अस्माक-मुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य।
वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ऋ० ४-३१-

"हे बुद्धि-तत्त्व के विकसित करने वाले परमात्मन्! हमारा यश-हमा तेज-देवों में भी सर्वोत्तम हो, वह सम्पूर्ण आकाश की भांति उन्नत, विस्तृ और व्यापक हो।"

: २२७ :

अस्मे धेहि द्युमद् यशो मघवदभ्यश्च मह्यं च।
सनिं मेधा-मुत श्रव: ॥ ऋ० ९-३२

"मेरे और सभी जीवन-धन के धनियों के लिये, हम सब में उज्ज्व तेज की धारणा हो—उज्ज्वल यश की स्थापना हो; हमारे लिये पवित्र बु का भाग हो और उज्ज्वल यश की प्राप्ति हो।"

: २२८ :

मनसः काम-माकूतिं वाचः सत्य-मशीय ।
पशूनां रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ।।

यजुः ३९-४

"मैं मनोभावना का पूर्ण करने वाला बनूं मैं अपनी वाणी से सत्य—सत्यभाषण—का आचरण करने वाला बनूं; प्राणि-जीवन की शोभा, अन्न का सम्पूर्ण बल यश, तेज और लक्ष्मी आदि सत्सम्पत्तियें मेरे जीवन में आश्रय पाने वाली हों।"

: २२९ :

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातु-र्दक्षिणाया इह स्याम् ।।

अथर्व० ६-५८-१

परमैश्वर्य का स्वामी परमेन्द्र देव, मुझे यशस्वी-तेजस्वी बनावे; पृथ्वी एवं आकाश ये दोनों मिलकर मेरे तेजस्वी बनने में कारण हों; चारों ओर प्रकाश फैलाने वाला सूर्य मुझे तेजस्वी बनाने में सहायक हो, और मैं भी इन सब सिद्धियों के देने वाले गुरुजनों का प्रेम-पात्र बनूं।"

: २३० :

यथेन्द्रो द्यावापृथिव्यो—र्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ।।

अथर्व० ६-५८-२

जिस प्रकार पृथ्वी और आकाश में इन्द्रात्मा यशस्वी एवं तेजस्वी हो रहा है, जिस प्रकार जीवन जगत् के सभी औषध रूप साधनों में रसतत्त्व—कर्मतत्त्व—तेज को धारण कर रहे हैं; इसी प्रकार हम सब भी सभी दिव्य जीवनों—दिव्य पदार्थों—दिव्य देवों-में यशस्वी और तेजस्वी हों।"

: २३१ :

यशा इन्द्रो यशा अग्नि—र्यशा सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याह-मस्मि यशस्तमः ।।

अथर्व० ६-५८-३

जब सूर्य भी यश वाला है, अग्नि भी यश वाला है और सोमदेव भी
लेकर ही पैदा हुआ है, तब फिर मैं (आत्मा) भी तो इस सारे जीवन
का स्वामी होता हुआ परम यशस्वी-परम तेजस्वी-बनता हूं।"

: २३२ :

यथा मधु मधुकृतः सम्भरन्ति मधावधि
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ।। अथर्व० ९-१-

"जिस तरह मधु-मक्खियां मधु-पर-मधु जमा करती जातीं हैं अथवा
तरह समाधि सुख के साधक साधन-पर-साधन किये जाते हैं; इसी तरह
मेरे माता-पिता ! मेरे आत्म जीवन में तेज-पर-तेज की धारणा हो, ओज
ओज का विकास हो और यश-पर-यश की आभा हो।"

: २३३ :

यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् । एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं
नियच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ।। अथर्व० १०.३.

"जिस प्रकार दिव्य देवों—दिव्य जीवनों—में अमृत रहता है और
प्रकार इन में सत्य भरा रहता है; ठीक इसी प्रकार मेरे जीवन की
रूप वरुणात्मा मुझ में कीर्ति एवं विभूति की स्थापना करे, तेज से मुझे भर
और यश से मानो मुझे व्याप्त कर दे।"

: २३४ :

इदं वर्चो अग्निना दत्त-मागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्रददातु मे ।।
अथर्व० १९-३

"यह तेज, पाक, यश, साहस, ओज, आयु और बल आदि सभी
परमाग्नि देव परमात्मा के दिये—प्रेरित किये—हुए ही हमें प्राप्त होते हैं
ये जो जीवन जगत् को उत्कर्ष देने वाले तेतीस वीर्य तत्त्व हैं, इन्हें भी
परमात्म देव हमें देता रहे और हम इन्हें ग्रहण करते रहें।"

: २३५ :

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वै—स्तद्देवैः सह संविदानः सन्दधातु बृहस्पतिः ।।
अथर्व० १९-४०

"मुझ में जो कोई भी दोष मन वा वाणी के कारण आगया हो, जिस से कि मेरी विद्या-बुद्धि विकृत भाव को प्राप्त हो गई है; सम्पूर्ण इन्द्रिय शक्तियों दिव्य बलों के साथ प्रेरित होता हुआ मेरा आत्मदेव उस कमी को पूर्ण करने वाला और उस छिद्र को भरने वाला हो।"

अभय-भावना ११

: २३६ :

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ॥

ऋ० १.११.२

"हे इन्द्र ! हे बल के अधिष्ठातृदेव ! आप के प्रेम-प्रवाह में स्नान करने वाले हम जीवन संग्राम के सिपाही किसी से भी भय मानने वाले न हों। किसी से पराजित न होने वाले सर्व विजयी आप को हम सब वीर भाव से प्रणाम करते हैं।"

: २३७ :

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्विद्विषो विमृधो जहि ॥

ऋ० ८-६१-१३

"हे परमेन्द्र देव परमात्मन् ! जहां से भी हमें भय की संभावना हो वहीं से हमें अभय कर दो। हे परमैश्वर्य स्वामिन् ! तमाम विद्वेषियों एवं हिंसकों को हम से दूर करो, और इस प्रकार हम आप की रक्षा-दीक्षा से उन्नत होते हुये जीवन-संग्राम में विजयी हों।"

: २३८ :

त्वन्नः पश्चा-दधरा-दुत्तरात् पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः ।
आरे अस्मत् कृणुहि दैव्यं भय-मारे हेती-रदेवीः ॥

ऋ० ८-६१-१६

"हे परम धन परमेश्वर ! हमें पीछे से, नीचे से, उत्तर से, सामने से

श्रोर हे स्वामिन्! चारों श्रोर से निर्भय कर दो। कोई भी दैवी, मानुषी और राक्षसी भय कहीं से भी हमें विचलित न कर सके।"

: २३९ :

यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह।
पवमान वि तज्जहि॥ ऋ० ९-६७-२१

"अय सब के पवित्र करने वाले परम देव! समीप से अथवा दूर से, जो कोई भी भय मुझे जान पड़ता है, उस सब को सर्वथा-सर्वदा के लिये-नष्ट कर दो-उसका बीज तक संसार से उठा दो।"

: २४० :

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शन्नः कुरु प्रजाभ्यो अभयं नः पशुभ्यः॥

य० ३६-२२

"हे सर्वगत! जहाँ-जहाँ भी आप की व्याप्ति है वहाँ-वहां से हमें सर्वथा निर्भय कर दीजिये। पुत्र-पौत्रादि से हमें अभय हो और प्राणिमात्र से हमें अभय हो।"

: २४१ :

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः। अथर्व० २-१५-१

"जिस तरह आकाश और पृथ्वी न तो किसी से भय खाते और न किसी से मारे ही जाते हैं; इसी तरह मेरा यह प्राण=जीवन न तो भय खाने वाला हो और न ही मारा जाने वाला हो।"

: २४२ :

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः॥ अथर्व २-१५-२

"जिस प्रकार दिन और रात अपने-अपने क्रम से आते-जाते हुए न तो डरते ही हैं और न मारे ही जाते हैं; इसी प्रकार से मेरे स्वामिन्! मेरे प्राण=जीवन को न तो भय ही हो और न मृत्यु ही हो।"

: २४३ :

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः । अथर्व० २-१५-३

"जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा अपना कार्य सम्पादन करते हुए न तो भयभीत होते हैं और न मारे ही जाते हैं; इसी प्रकार हमारा प्राणात्मा न तो कभी किसी से भयभीत ही हो और न कभी मारा ही जाये ।"

: २४४ :

यथा सत्यं चानृतं च न बिभितो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ अथर्व० २-१५-५

"जैसे सत्य और असत्य अपने-अपने स्थान पर निर्भय और निर्दिष्ट हैं; वैसे ही मैं भी अपने स्थान पर अपनी स्थिति पर-निर्भय और निर्दिष्ट रहने वाला बनूं ।"

: २४५ :

यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ अथर्व० २-१५ ६

"जैसे भूत और भविष्यत् निर्भीक और निर्विकार रूप से अपनी-अपनी परिधि में व्याप्त हैं; ऐसे ही हे स्वामिन् ! मैं भी अपनी निर्दिष्ट जीवन-परिधि में निर्भीक और निर्दोष रूप से कार्य-क्षम बनूं ।"

: २४६ :

अभयं नः करत्यन्तरिक्ष-मभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चा-दभयं पुरस्ता-दुत्तरा-दधरा-दभयं नो अस्तु ॥
अथर्व० १९-१५-५

"परम पिता परमेश्वर हमारे लिये आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी दोनों-तीनों को भय रहित कर दे । हमें पीछे से अभय हो, आगे से अभय हो, नीचे से अभय हो और ऊपर से भी अभय हो ।"

अभयं मित्रा दभय ममित्रा-दभयंज्ञाता दभयंपुरोयः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।

अथर्व० १९-१५-६

"हमें मित्रों से अभय हो, अमित्रों से अभय हो, सजातियों से अभय हो और जो भी हमारे सामने आये, उस से अभय हो। हमारे लिये न रात को भय हो, न दिन को भय हो; सारी दिशायें, उपदिशायें निर्भय मित्र की भांति दिखाई दें—भय का कहीं कोई चिह्न दीख न पड़े।"

वीर भावना

११

: २४८ :

वयं शूरेभि-रस्तृभि-रिन्द्र त्वया युजा वयम् ।
सासह्याम पृतन्यतः ।।

ऋ० १-८-४

"हे इन्द्रदेव ! हम अपने सुरक्षित सूरमाओं के साथ और आप के साथ निरन्तर सहयोग करते हुए ही शत्रु-सेनाओं का सामना करते और कर सकते हैं।"

: २४९ :

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्ये-माक्षभि-र्यजत्राः ।
स्थिरै-रंगै-स्तुष्टुवांस-स्तनूभि-र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।

ऋ० १-८९-८

"हम दिव्य-जीवनों और पूज्यभावों के रखने वाले कानों से निरन्तर सद्वचन सुनने के इच्छुक हों, आँखों से सत्पदार्थ देखने के अभिलाषी हों, अंगों से पूरे मजबूत हों, शरीरों से हृष्ट-पुष्ट हों; और सदैव दैवी-सम्पत्तियों की ओर अग्रसर होने वाली आयु के व्यतीत करने वाले हों।"

: २५० :

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रा-नडुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ।।

ऋ० ३-५३-१८

"हे परमात्मन् ! आप ही बल के देने वाले हैं; हमारे शरीर रथ के सभी घोड़ों में बलवीर्य का संचार करो, हमारे छोटे एवं बड़े-सभी जीवन के लिये जीवन बल का दान हो ।"

: २५१ :

शविष्टं न आभर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणा-मस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ।।

ऋ० ६-१९-६

"हे शूर ! हे अनभिभूत ! हे हरिधन युक्त इन्द्राधिदेव ! हम में पूर्ण बल का संसार हो, हम में पूर्ण ओज का समावेश हो, हममें पूर्ण साहस की धारणा हो, हममें उज्ज्वल कीर्तियों का विकास हो और मनुष्यों को परमानन्द पहुंचाने वाले जितने भी सुख-साधन हैं उन सब का हमें दान हो ।"

: २५२ :

धन्वना गा धन्व-नाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रो-रप कामं कृणोति धन्वना सर्वा प्रदिशो जयेम ।।

ऋ० ६-७५-२

"हम अपने उत्कृष्ट जीवन-धनुष से समस्त कार्य क्षेत्रों में विजयी हों, हम इसी धनुष से सम्पूर्ण संग्रामों में विजयी हों और हम इसी वीर धनुष के बल से घोर युद्धों में विजयी हों । हमारा यह आत्म-धनुष शत्रु को मानो निराश-हताश-कर देता है; इसलिये इसी धनुष से हम चारों दिशाओं पर विजय पाने वाले हो रहे हैं और होंगे ।"

: २५३ :

अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्त्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध-स्वमोको अभि वः स्याम ।।

ऋ० ७-५६-२४

"अय विजयी वीरो ! हमारी वीर सन्तान सच्चे वीर भावों से पूर्ण हों, मानव-जीवन में प्राणों की आरोपणा करने वाला परमेश्वर उस (सन्तति) का भरण करने वाला हो, जिससे कि हम सुख-भूमियों को प्राप्त करने वाले हों, और आप के होकर अपने जीवन-गृहों में निवास करने योग्य हों।"

: २५४ :

धनु-र्हस्ता-दाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम॥

ऋ० १०-१८-९

"मृत वीरों के हाथ से भी धनु-बल को ग्रहण करते हुए हम वीर वर्चस्वी अपने क्षात्र बल, तेजो बल और शरीर बल के लिये अग्रसर हों अय मृत वीरात्मन्! तू भी एक बार फिर इस जीवन-संग्राम के पुनीत क्षेत्र में प्रवेश कर—फिर एक बार तुम और हम मिलकर समस्त संघर्षों और सम्पूर्ण अभिमानों पर विजय प्राप्त करें।"

: २५५ :

यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता॥

ऋ० १०-८३-१

"हे धर्म बल के स्वामिन्! हे सुदृढ़ देव! जो मनुष्य निष्कपट मन से आप का विधान करता है, वहाँ सम्पूर्ण साहस, ओज एवं तेज के साथ परिपुष्ट होता है। हम सब आत्मवीर साहस के देने वाले परम साहस के स्वामी एवं साहसरूप आपके सहयोग से दास और आर्य, नेक और बद, भले और बुरे आसुरी और दैवी आदि सभी तरह के द्वन्द्वभावों के सहन करने वाले हों।"

: २५६ :

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः।
दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः॥

ऋ० १०-१२८-१

"मेरे इन्द्रिय देव मेरे शरीर में बल का संचार करें, बड़े-बूढ़ों की असीस

मुझ में बल का संचार करे, दिव्य-देव की दिव्य-वाणी (वेदवाणी) मुझ में तेज की स्थापना करे और पूर्वाभ्यासी दिव्य तपस्वी जन अपने प्रेम का भागी बनायें—इस प्रकार हम सब ओर से सुरक्षित होते हुए शरीर, मन और आत्म से सर्वांग पूर्ण वीर भाव का सम्पादन करें।"

: २५७ :

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ॥

अथर्व० २-२६-४

"गायों का दूध दोह कर संचित करता हूं और प्रेम रूपी घी से प्रेम रस और प्रेम बल का भी संचय करता हूँ। इस प्रकार से संचित किये हुए प्रेम बल और वीर-जन, जीवन जगत् के मानो दृढ़ स्तंभ हों; और मेरी गायें-इन्द्रियें- वाणियें भी मुझ गोस्वामी के निकट दृढ़ और स्थायी हों"

: २५८ :

इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः।
घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति॥ अथर्व० ७-९३-१

"कर्त्तव्य धर्म के आधारस्तम्भ इन्द्रात्मा की सहायता से हम सब विरुद्ध शक्तियों का सामना करने वाले हों; बुराइयों के प्रति घोर युद्ध करते हुए ही हम वीर भावों के स्वामी हों"

: २५९ :

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्।
पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि॥

अथर्व० ७-९-४

"जीवन जगत् का सर्वांग पुष्ट करने वाला परमात्मा अपनी ज्ञान-गरिमा का दाहिना हाथ हमारी पीठ पर रक्खे, हमारे किसी भी कारण से नष्ट हुए जीवन तेज को पुनः जीवित करे और हम उस नष्ट हुए जीवन तेज के साथ ही फिर उन्नत होते हुए वीर वर्चस्वी बनें"

: २६० :

जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽभि तिष्ठेम दूढ्यः ।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चावेरिन्द्र प्र णो धियः ॥

ऋ० ८-२१-१२

"हे परम प्रख्यात परमात्मान् ! हम बड़े-से-बड़े जीवन संग्रामों में विजय करने वाले हों; और तमाम दुर्मतियों-दुर्बुद्धियों का सामना करने में समर्थ हों। हम अपनी मानव शक्तियों से तमाम वृत्र भावों का नाश करते हुए उन्नत हो सकें—हे इन्द्रात्मन् ! हमारी बुद्धि को सत्प्रेरणा हो, उसका सदुपयोग हो"

: २६१ :

एको बहूनामसि मन्यवीडितो विशंविशं युधये सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ॥

ऋ० १०-८४-४

"अय कर्त्तव्यधर्म के नियत करने वाले ! अय अखण्ड ज्ञान के भंडार! तुम एक होते हुए भी तो अनन्त प्राणियों से प्रशंसित हो रहे हो, तुम ही तो जीवन-संग्राम के लिए हमें प्रजा-प्रजा में जन्म-जन्म में शासित एवं प्रेरित करते हो। तुम्हारी सहकारिता से विजय पाने के लिये ही हम यह तेजस्वी जीवन का नाद बजा रहे हैं"

: २६२ :

अजैष्माद्या सनाम चाभूमानागसो वयम् ।
जाग्रत् स्वप्नः सङ्कल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥

ऋ० १०-१६४-५

"आज हम विजयी हों और अपना विजयी भाग ग्रहण करते हुए सदा के लिये सर्वथा पाप रहित हो जांय। जागते हुए, सोते हुए और संकल्प करते हुए जो कुछ पाप भावना उत्पन्न हुई हो, वह उसी पर अपना प्रभाव करे जिसे हम द्वेषी समझते हैं अथवा जो निष्पापियों पर भी पाप का आरोपण करता है"

: २६३ :

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे-भरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्रशत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥

अथर्व० ७-५०-४

"हे मघवन् ! हे इन्द्राधिदेव ! हम आप का सहयोग पाकर चारों ओर घिरे हुए मृत्यु भाव पर सर्वथा सर्वत्र विजयी हों, हमारे जीवन अंश की प्रत्येक जीवन-संग्राम में उत्तमता से रक्षा हो; हमारी जीवन-यात्रा के लिये सन्मार्ग खुले एवं सुगम हों; और शत्रु-भावों के सभी मार्गों का वलपूर्वक विध्वंस हो"

: २६४ :

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥

अथर्व० ७-५०-८

"मेरा कर्त्तव्य धर्म मेरे दाहिने बाजू हो और मेरी विजय मेरे बायें बाजू खड़ी हो; इस तरह मैं जीवन भूमि का जीतने वाला हूंगा प्रगति भूमि का जीने वाला हूंगा जीवन धन का जीतने वाला हूंगा और स्वर्णसुख का पाने वाला हूंगा"

स्वातन्त्र्य-भावना ● २२

: २६५ :

उदुत्तमं वरुण पाश-मस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥

ऋ० १-२४-१५

"हे वरेण्य वरुणराज ! हमारे ऊपरि बन्धनों को ऊपर से, भीतरी बंधनों को भीतर से और निचले बन्धनों को नीचे से खोल दीजिए । हम में से शारीरिक, मानसिक, एवं आत्मिक बन्धन रूप पाप-वृत्तियों को नष्ट कर दीजिये ।

अब, हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! आप के दीक्षा-व्रत में निष्पाप होते हुए हम सम्पूर्ण-अखण्ड-स्वतन्त्रता के लिए हों, पूर्ण मोक्ष के लिये हों"

: २६६ :

यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति ।
अप स्म तं पथो जहि ।। ऋ० १-४२-२

"हे पूषन् परमात्मन् ! जो कोई भी पाप-पापी, चोर, डाकू, दुःशासक अथवा दुर्विचार हमारे पर शासन करना चाहे उसे हमारे जीवन मार्ग से हटा दो"

: २६७ :

यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः ।
अस्माकमिद् वृधे भव ।। ऋ० १-७९-११

"हे परमतेजस्वि परमात्मन् ! जो कोई भी हमें अपना दास-गुलाम बनाना चाहता हो, वह हम से समीप हो या दूर, हम से दूर हो हमारी आँखों से ओझल हो; आप हमारी उन्नति में सहायक हों—हमारे पथ प्रदर्शक हों"

: २६८ :

यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपु—र्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ।।
ऋ० २-३४-९

"हे रुद्रो ! हे वास भूमि के स्वामियो ! हे मरुद्वीरो ! जो मनुष्य डाकू वृत्ति को धारण करता हुआ केवल धन हरण के लिये ही हमें अपने आधीन करना चाहता है, ऐसे हिंसक शत्रु से हमारी रक्षा करो। अपनी तपोवृत्तियों एवं प्रतिक्रियाओं से उन लुटेरों के जीवन में परिवर्त्तन पैदा करो और उनकी इन हिंसा वृत्तियों का ही नाश कर डालो"

: २६९ :

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति ।
तस्मान्नः पाह्यंहसः ।। ऋ० ६-१६-३१

"हे परम प्रकाश देव ! दुर्वृत्तियों-दुर्भावों से भरा हुआ जो भी पापी

मनुष्य हमें हानि पहुंचाने के लिये ही स्वाधीन करता है—ऐसे पापी और पाप से हमारी रक्षा करो"

: २७० :

अन्त-र्यच्छ जिघांसतो वज्र-मिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघव-न्नार्यस्य वा सनुत-र्यवया वधम् ।।

ऋ० १०-१०२-३

"हे परमेन्द्र देव ! अपना ज्ञान-वज्र दूसरों को दास बनाने वाले हिंसक पापी के हृदय में पहुंचाओ; हे परमेश्वर्यं स्वामिन् ! दास हो या स्वामी, आर्य हो या अनार्य—जीवन का सदुपयोग करने वाले आस्तिक की हृदय वेदना को दूर ही करो—दूर ही करना होगा"

: २७१ :

यो न इन्द्रा-भितो जनो वृकायुरादिदेशति ।
अधस्पदं तमीं कृधि विबाधो असि सासहिर्नभन्तामन्यकेषां ज्याका
अधि धन्वसु ।।

ऋ० १०-१३३-४

"हे सर्व स्वामिन् ! जो मनुष्य इस प्रकार डाकू वृत्ति में आयु बिताते हुए हमारे ऊपर शासक वृत्ति से हकूमत चलाना चाहता है, उसे उलटे पैर वापस करो। तुम ही उस की सफलता में बाधा दे सकते हो, तुम उसे सहन कर सकते हो; इस लिये इन परकीय भाव रखने वाले डाकुओं की कमानों पर चढ़ी हुई डोरी को तोड़ दो और उन्हें डाकू वृत्ति में विफल कर दो"

: २७२ :

यो न इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ठ्यः ।
अव तस्य बलं तिर महीव द्यौरध त्मना नभन्ता मन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।।

ऋ० १०-१३३-५

"हे परम धन ! अपना या पराया कोई भी वह मनुष्य जो हमें दास बनाना चाहता है, पृथ्वी की भांति फैले हुए भी उस के बल को हमारे ही

आत्म बल के द्वारा उड़ा दो; उन के धनुषों पर कसी हुई डोरी को तोड़ और हमारी स्वतंत्रता की रक्षा करो"

: २७३ :

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्॥

यजु० ३५:

"मृत्यु से परे, उस से भी और आगे, जो तेरी दिव्य यात्रा से भी का मार्ग है, उसी का अनुगमन कर; अय आँखों और कानों के रखने वा गुरु जनो ! मैं कहता हूं कि हमारी मानवी प्रजाओं का नाश मत होने वीरों और वीरताओं की भी कभी कमी मत होने दो—हमारी स्वाधीनता नाश मत होने दो"

: २७४ :

यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति।
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति॥

अथर्व० ६-६

"हे शोभात्मन् ! जो मनुष्य दुर्व्यसनी होता हुआ भी हम सद् व्य हारियों पर आदेश-हुकूमत करना चाहता है, अपने अनादि वज्र से उस मुख में उपदेश का ऐसा वार करो कि जिस से वह भली भांति विनीत हो हुआ पीछे हट जाय"

: २७५ :

यो नः सुप्तान् जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषा-स्तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः॥

अथर्व ७-१०८

"अय प्रत्येक पैदा हुए पदार्थ के जानने वाले परमेश्वर ! जो हम सो हुओं को या जागतों को पराधीन बनाता है, जो बैठे हुओं अथवा चलते फिरते हम लोगों को अपने आधीन गुलाम बनाता है; अय जन्मज्ञानि राजन् विश्व व्यापक सहयोग और परम प्रेम के रखने वाले साथियों की सहायता

से उन सब को उलटे पांव भगा दो और अपने जीवन जगत् को पराधीनतासे, गुलामी से बचा लो"

: २७६ :

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् ।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्रीय धत्तन ॥

अथर्व० १६-२४-१

"जिस नियम, धर्म एवं राष्ट्र बल को दिव्य ज्ञानियों ने पैदा करने वाले परम देव को पूर्ण रूप से धारण किया है; उसी नियम, धर्म एवं राष्ट्र बल से अय ज्ञान के स्वामिन् ! अय ज्ञान के धारण करने वालो ! तुम सब भी अपनी स्वतन्त्रता—स्वातन्त्र्य जीवन—को राष्ट्र-निर्माण के लिये धारण करो"

सन्मार्ग-भावना

२३

: २७७ :

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्म-ज्जुहुराण-मेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम ॥

ऋ० १-१८६-१

"हे तेजस्वि देव ! हे सब ज्ञान तत्त्व के जानने वाले परमेश्वर ! हमें जीवन धन के लिए सत्पथ की ओर प्रेरित करो। कुटिल फल के देने वाले पाप को हमसे दूर-अति दूर भगाओ, अन्त में हम फिर आप की भक्ति का विधान करें और अपने को उसी में समाप्त करें।"

: २७८ :

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥

ऋ० ५-५१-१५

"हम सरल सत्य और निश्चित मार्ग के अनुगमन करने वाले हों, जैसे कि सूरज और चाँद निश्चित परिधियों-मार्गों का अनुसरण करते हैं। हम सब एक दूसरे को सहायता देते हुए, एक दूसरे को हानि न पहुँचाते हुए और एक दूसरे को जानते-पहचानते हुए साथ २ संसार-यात्रा को सफल तथा पूर्ण करने वाले हों।"

: २७६ :

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम्।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति॥

ऋ० १०-२-३

"हम जीवन के सभी दिव्य मार्गों के अनुगामी हों, जिन वैदिक कर्मों को कर सकें, उन तमाम कर्मों के करने में उत्साही हों। विद्वान् तपस्वी उन मार्गों को जानते हुए आयोजना करें, क्योंकि हिंसारहित जीवन-यज्ञ के पूर्ण करने वाले जीवनयात्रा के लिए अनुकूल मार्गों एवं सामग्रियों की कल्पना कर सकते हैं।"

: २८० :

वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमा रभामहे।
ऋतस्य नः पथा नयाति विश्वानि दुरिता
नभन्ता मन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु॥ ऋ० १०-१३३-४

"हे परमेन्द्र देव! हम तो तुम्हारी चाहना करते हुए ही तुम्हारे प्रेम पात्र में आये हैं; हमें सत्य के सुन्दर मार्ग पर चलाओ, सम्पूर्ण दु.ख-दरिद्रों का नाश करो और यह जो परभाव (परकीयता) के धनुषों पर ईर्ष्या की रस्सी चढ़ी हुई है इसे सदा के लिए तोड़ दो।"

: २८१ :

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवान-मुग्रं सत्रा दधान-मप्रतिष्कुतं शवांसि।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री॥

अथर्व २०-५५-१

"मैं तो परमैश्वर्य रखने वाले, महान्, तेजस्वी, सत्य बल के धारण करने वाले और बेरोक-टोक सर्वत्र गति रखने वाले परमेन्द्र देव का ही

आवाहन करता हूँ। महामान्य परमपूज्य प्रभु हमारी विद्या-वाणियों द्वारा ही साधना करे और जीवन धन की पूर्ण कामना के लिए सम्पूर्ण सन्मार्गों से प्रेरित करे।"

माधुर्य्य-भावना

२३

: २८२ :

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वी-र्नः सन्त्वोषधीः ॥ ऋ० १-९०-६

"ये मधु—पवन सत्य का संदेश लाने वाले हों, ये समुद्र सच्चे माधुर्य को प्रवाहित करने वाले हों और हमारे ये सभी जीवनोपयोगी पदार्थ भी मधुरता लिये हुए हों।"

: २८३ :

मधु नक्त-मुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः।
मधु द्यौ-रस्तु नः पिता ॥ ऋ० १-९०-७

"हमारी रात और रात की नींद मधुर हो, हमारा प्रातः काल का समय मधुर और प्यारा हो, पृथ्वी का यह सम्पूर्ण गोला मधुरता का मानो भंडार हो जाय और पिता की भाँति सिर पर व्यापने वाला यह आकाश मधुरता की वर्षा करने लगे।"

: २८४ :

मधुमा-न्नो वनस्पति-र्मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
माध्वी-र्गावो भवन्तु नः ॥ ऋ० १-९०-८

"हमारे लिये ये सभी वनस्पतियें रस लिये हुए हों, हमारे लिये सूर्य मधुर ज्योति का देने वाला हो और हमारे लिये सूर्य की एक-एक किरण माधुर्य का विस्तार करने वाली हो।"

: २८५ :

मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महिं श्रवो वाज-मस्मे सुवीर्य्यम् ।।

ऋ० ६-७०-५

"माधुर्य के बरसाने वाले, माधुर्य से पूर्ण कर देने वाले, मानव-जीवन रूपी यज्ञ एवं धन के धारण करने वाले और माधुर्य व्रत के पालन करने वाले दिव्य भूमि एवं आकाश हमारे लिये माधुर्य का सिंचन करने वाले हों, हम में पूर्ण तेज, पूर्ण यज्ञ, पूर्ण वीर्य, और पूर्ण बल की योजना करने वाले हों।"

: २८६ :

मधुमन्मे परायणं मधुमत् पुन-रायनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमत-स्कृतम् ।।

ऋ० १०-२४-६

"अय मेरे माता और पिता ! मेरा संसार-गृह से प्रयाण-प्रस्थान करना मधुर भावनाओं से युक्त हो और मेरा फिर संसार में प्रवेश करना भी मधुर भावनाओं से ही पूर्ण हो। इस लिये तुम दोनों अपनी दिव्य जीवन कृतियों की सहायता से मेरी इन दोनों यात्राओं को मधुर फलों से युक्त कर दो, मधुर फलों से भर दो।"

: २८७ :

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रता-वसो मम चितमुपायसि ।।

अथर्व० १-३४-२

"मेरी जीभ के अगले भाग में मधु हो, मेरी जीभ के पिछले भाग में मधु हो और मेरी जीभ का मूल तो मानो मधु का प्रतिनिधि ही हो; हे परम देव ! मेरी कर्म की प्रवृत्तियों में तेरा निवास हो और मेरे हृदय के निकट-अतिनिकट-तेरा विकास हो।"

: २८८ :

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ॥

अथर्व० १-३४-३

"मेरा जाना मधुरता से युक्त हो, मेरा आना मधुरता लिये हुए हो और मैं वाणी द्वारा भी मधुर वचनों को बोला करूं; स्वामिन् ! मैं तो सम्पूर्ण ही मधुरता का रूप बनजाऊं ।"

: २८९ :

यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु ।
सुरायां सिच्यमानायां यत्तत्र मधु तन्मयि ॥

अथर्व० ९-१-१८

"जितना माधुर्य गिरि-पर्वत-निवासी संन्यासियों में है, जितना माधुर्य पर्वतों की कन्दराओं में है, जितना माधुर्य गौओं-घोड़ों-इन्द्रियों और उन की प्रगतियों में है; और जितना माधुर्य इस प्रवाहित स्वर्गीया वृत्ति में है—हे परमेश्वर ! वह सम्पूर्ण माधुर्य मुझ में हो—मेरे जीवन में हो ।"

गृह-भावना ● २४

: २९० :

बृहस्पते ! सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गा-द्वसवः सुदानवो विश्वस्मा-न्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥

ऋ० १-१०६-५

"हे महान् पति परमेश्वर ! हमारे जीवन-जगत् के इन घरों को सुगम और सुखमय कर दो, आप का जो मानव हितकारी स्वर्गीय कल्याण है, उसी की हम जीव चाहना करते हैं । रथ को जैसे दुर्गम मार्गों से सुचतुर एवं सज्जन रथी आसानी से निकाल ले जाता है; ऐसे ही हे स्वामिन् ! हमारे

इस जीवन रथ को संसार की दुर्गम घाटियों में से सम्पूर्ण पापों से बचाकर निकाल दो।"

: २९१ :

अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते।
मानः स्तेन ईशत माघशंसो बृह-द्वदेम विदथे सुवीराः॥

ऋ० २-४२-३

"हे तीव्र दृष्टि के रखने वाले गृहमेधावियो! सत्यवादी और सुमंगल रूप धारण करते हुए सीधे मार्गों से घरों में प्रवेश करो। तुम्हारे जैसे गृह गुरुओं की संरक्षकता में हमारे घरों पर चोरों का शासन न होने पावे, पापियों-पापों का शासन न होने पावे और हम जीवन वीर भी गृह यज्ञों के लिये विशाल भाषी हों।"

: २९२ :

इदं हि वां प्रदिवि स्थान-मोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम्।
आ नो दिवो बृहतः पर्वता-दाद्भ्यो यात-मिष-मूर्जं वहन्ता॥

ऋ० ५-७६-४

"हे माता-पिता! यह तो आप का दिव्य लोक में स्थान है, यह आप का जीवन गृह है, ये आप के एवं हम सब के साँसारिक घर हैं और संसार में फैली हुई मायाविनी प्रकृति का दुर्भेद्य गढ़ है। इसलिये आप इस विस्तृत जीवन लोक से और विशाल कर्म जीवन से बल, पौरुष, साहस, उत्साह और तेज को धारण करते हुए आयें और इन घरों को सुशोभित करें।"

: २९३ :

गृहो यास्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः।
कुवित् सोमस्यापामिति॥

ऋ० १०-११९-१३

"सब तरह की पुकारों-भावों को ग्रहण करने वाला मैं (आत्मा) ज्ञान, कर्म, तेज, एवं ओज आदि आभूषणों से अलंकृत होकर इन घरों (जीवन गृहों) में प्रवेश कर रहा हूं, क्योंकि मैंने अनेक बार जीवन-सोम का (कर्म-फल का) पान किया है, अतः मेरा इन घरों में प्रवेश करना अनिवार्य है।"

: २६४ :

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जान-न्त्वायतः ॥

अथर्व०७-६०-२

"ये सारे-के-सारे घर सुखमय हो जाँय, ये सारे-के-सारे तेज से भर जायें, ये सब-के-सब दूध-पुत्र से पूर्ण हो जायें, ये सब-के-सब सुन्दरता से भरपूर हो जाँय और ऐसे ही भरपूर घर हम आने वालों को प्राप्त हों।"

: २६५ :

येषां-मध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहा-नुप ह्वयामहे ते नो जान-न्त्वायतः ॥

अथर्व०७-६०-३

"परदेश में रहता हुआ मनुष्य भी जिन की स्मृति रखता—रख सकता—है, जिन में रहते हुए एक दूसरे से प्रेम का मानो प्रवाह चलने लगता है; हम ऐसे ही जीवन-गृहों की कामना रखते हैं; हम आने वालों को ऐसे ही घरों की प्राप्ति हो।"

: २६६ :

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः ।
अक्षुध्या अतृष्या-स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥

अथर्व ७-६०-४

"अनेक धनों से भरपूर कहे जाने वाले, मित्र रूप से रक्षा करने वाले, सरस सुख के साधन, क्षुधा हीन और तृष्णाहीन ये जीवन गृह हमारे वास करने में किसी के लिए कभी भी भयानक न होने पाये।"

: २६७ :

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥

अथर्व० ७-६०-५

"हमारे इन सुन्दर गृहों में दूध देने वाले गाय आदि पशु प्रेम पूर्वक पाले गये हों, ऊन देने वाले भेड़ आदि चौपाये स्नेह से सुरक्षित किये गये हों और अपने तथा उन के लिये अन्न का बहुत बड़ा भण्डार संग्रह किया गया हो।"

: २६८ :

पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्र या पायुभिश्च ॥
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत् सूरिभि ऋंजुहस्त ऋजुवनिः

ऋ० ५-४१-१५

"पद-पद पर मेरी महिमा की धारणा हो रही है, वरण किये जाने वाली और शक्ति शालिनी महामान्या मातृभूमि अपने रक्षा करने वाले रस तत्त्वों से हमें सेचने वाली हो; और कोमल रसों को रखने वाला वही भूमि तत्त्व ज्ञानियों द्वारा सेवन किये जाने पर सरल साधनों वाला हो उठे।

: २९९ :

अगव्यूति क्षेत्र-मागन्म देवा उर्वी सती भूमि-रंहूरणाभूत ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टा- वित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥

ऋ० ६-४७-२०

"हे महात्मन् ! हम दैवी-भावों के रखने वाले जीव गो, ज्ञानहीन जीवन-भूमि पर आ पहुँचे हैं, यह भूमि विस्तीर्ण होती हुई भी ममता-माया-से पूर्ण हो गई है; हे परमेन्द्र देव! अपने भक्तों के इस दशा में पहुंच जाने पर गो—ज्ञान—की साधना में सहायता करो और सन्मार्गों का विस्तार करो"

: ३०० :

सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्युत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥

अथर्व० १२-१-१

"महान् सत्य, परम तत्त्व, दीक्षा, तप, ज्ञान और यज्ञ आदि सब मिल कर जिस पृथ्वी का धारण करते हैं, भूत एवं भविष्यत् की रक्षा करने वाली वही भूमि हमारे लिये विशाल वासिनी हो—विस्तृत हो"

: ३०१ :

असम्बाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधी-र्या बिभर्त्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥

अथर्व० १२-१-२

"जिस भूमि पर रहने वाले मनुष्यों में ऊपर और नीचे अथवा ऊंच और नीच की वन्धन रूप कोई भी रोक-टोक न होकर सम्पूर्ण समता विराज रही है; जो भूमि नाना वीर्यों, नाना वलों एवं नाना ओषधियों का भरण करने वाली है—हे सर्व स्वामिन्! वह हमारे लिये विस्तृत हो, उन्नत हो, और सिद्धियें देने वाली हो"

: ३०२ :

यस्यां समुद्र उत सिन्धु-रापो यस्या-मन्नं कृष्टयः सम्बंभूवुः ।
यस्या-मिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्व-पेये दधातु ॥

अथर्व० १२-१-३

"जिस पर समुद्र, नद,नाले, कूप, तडगादि जल मार्ग वर्त्तमान हैं; जिस में अन्न और प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिस में यह सम्पूर्ण प्राणि-जगत् प्रगति-शील होता, श्वास-प्रश्वास लेता और चलता-फिरता रहता है: वही भूमि हमारे लिये अतीत भोगों के धारण करने वाली हो"

: ३०३ :

यस्यां पूर्वे पूर्वंजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरा-नभ्य-वर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥

अथर्व १२-१-५

"जिस पर पूर्वजन्मा-पूर्व पुरुष-लोग अनेक प्रकार से कर्त्तव्य-पालन के उपदेश-अनुभव -छोड़ते हैं; जिस पर दैवी जीवन, आसुरी जीवनों को फिर दैवी भावों में परिवर्त्तित करते हैं; वही भूमि हमारे लिये गो-गति-की आयु, वास, स्थान, सौभाग्य तथा वर्चस् के धारण करने वाली हो ।

: ३०४ :

विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमि-रग्नि-मिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥
अथर्व० १२-१-६

"सब का भरण करने वाली, अनेक धन-खानियों के रखने वाली, प्रत्येक स्थिति की आधारभूत, सोने की कानों से पूर्ण, जंगम जगत् को विश्राम देने वाली, सम्पूर्ण प्रगतियों में रहने वाले अग्नि तत्त्वों को धारण करने वाली और आत्मा-परमात्मा-की प्रधानता में रहने वाली यह भव्य भूमि हमें जीवन धन के लिये धारण करने वाली हो"

: ३०५ :

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रामादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहा-मथो उक्षतु वर्चसा ॥
अथर्व० १२-१-७

"जिस सब कुछ देने वाली और विस्तृत जीवन-भूमि को आलस्य रहित एवं सचेत देवगण सुरक्षित रखते हैं; वही भूमि अपने पूर्ण तेज के साथ हमें पूर्ण माधुर्य-प्रिय माधुर्य-की देने वाली हो"

: ३०६ :

यार्णवेऽधि सलिल-मग्र आसीद् यां मायाभि-रन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृत-ममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमि-स्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ अथर्व० १२-१-८

"जो भूमि कार्य रूप में आने से पहले परम विस्तृत आकाश में सलिल (कारणतत्त्व—Protoplasms) के रूप में अवस्थित रहती है, जिस भूमि को कार्य रूप में आने के उपरांत पार्थिव तत्त्वज्ञानी जन वैज्ञानिक गवेषणाओं द्वारा अपने अनुकूल बनाते हैं और जिस भूमि का अमर हृदय नित्य कारण तत्त्व-परम व्यापक अन्तरिक्ष में सत्य स्वरूप परमेश्वर से आवृत रहता है; वही भव्य भूमि हमारे परमोत्तम राष्ट्र में हमारे ही लिये तेज, ओज और बल की धारण करने वाली हो"

: ३०७ :

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशस-मुषा ददातु सुग्म्यम् ।।

ऋ० १-४८-१३

"जिसकी देदीप्यमान किरणें-ज्योतियें-प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक प्रकार से जीवन-ज्योति के दिखाने वाली हैं; प्रत्येक प्रभात का वह सुहावना समय प्रत्येक मनुष्य के लिए सारे संसार में फैलाने वाले प्रकाश, तेज, उत्साह, सौंदर्य और सौभाग्य का लाने वाला हो।"

: ३०८ :

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्वभि-स्तेभिष्ट्वा चातयामसि ।।

ऋ० १०-१५५-१

"अय दुष्काल दुर्भिक्ष के लाने वाली ! अय मानव जीवन को अंग हीन करने वाली ! अय विकराल रूप से आने वाली ! अय सब कुछ हरने वाली! अलक्ष्मी रूप दरिद्रते ! हमें छोड़ कर पहाड़ों को भाग जा, आकाश में फटने एवं एकत्र होने वाले मेघ मण्डल की जल-धाराओं से तुम्हें भगा दूंगा—उड़ा दूंगा।"

: ३०९

चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी ।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते ! तीक्ष्णश्रृंगोदृषन्निहि ।

ऋ० १०-१५५-२

"हे ज्ञानाधिदेव ! हे परम तेजस्विन् ! जो जीवन के सभी अंगों, अंकुरों को तपाने वाली है; जो सब कुछ हरण करने वाली है और जो मानव-जीवन को गिराने वाली है; उस सौभाग्य नाशिनी दरिद्रता को सदा के लिए उलटे मुँह गिराओ—वह यहाँ से नष्ट कर दी गई, वह वहाँ से नष्ट कर दी गई और वह सब जगह से नष्ट कर दी गई।"

: ३१० :

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥

ऋ० १-०१५५-३

"अय दुर्मार्ग की दुःसाध्य देवता दरिद्रते ! यह जो सूखा काठ बहता चला जा रहा है, इस पर सवार होजा और समुद्र के उस पार—जहाँ कोई मनुष्य निवास नहीं करता उस जनहीन देश को चली जा ।"

: ३११ :

यद्ध प्राची—रजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥

ऋ० १०-१५५-४

"अय जीवन जगत् में मण्डूर-भुस के भरने वाली दरिद्रताओ ! जब तुम हमारी उन्नतियों से भगाई जाकर दूर—अतिदूर पहुँच कर नष्ट हो जाओगी, तब हम समझ लेंगे कि आत्म जीवन के सभी शत्रु मारे गये और वे सब पानी के बुलबुले की तरह स्वयं ही पैदा होकर नष्ट हो गये ।"

: ३१२ :

परीमे गा-मनेषत पर्यग्नि-महृषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥

ऋ० १०-१५५-५

"जब ये मनुष्य अपनी विद्या, वाणी, इन्द्रिय-शक्ति एवं भूमि को सब तरह से उन्नत कर लेते हैं, जब ये अपने जीवन तेज, आत्मा एवं परमात्मा को चेता लेते हैं और जब ये अपने दिव्य धर्मों में सफलता प्राप्त कर लेते हैं; तब कौन है जो इन को नीचा दिखा सके, जो इन्हें पराजित कर सके अथवा जो इनका सामना कर सके ?"

: ३१३ :

दौःष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्व-मराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्म-न्नाशयामसि ॥

अथर्व० ४-१७-५

"हे परमपिता ! बुरे सपने, बुरी जीवन वृत्ति, दुर्भावरूप राक्षसी वृत्ति, महाकृपणता, दरिद्रता और बुरी कही जाने वाली सभी बातों-वृत्तियों को हम अपने जीवन से नष्ट कर सकें यही हमारी आन्तरिक भावना है"

: ३१४ :

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥

अथर्व० ६-११०-१

"अय मेरे तेजस्वी आत्मन् ! तू इस जीवन यज्ञ का सनातन एवं पूज्य होता होने पर भी, इन अहिंसनीय जीवन-यज्ञों में नवीन रूप से विराजमान होता रहता है; इस लिये अपने शरीर को खूब पुष्ट करो, और हममें प्राणि-जीवनों के लिये सौभाग्य भावना का सर्वत्र विस्तार करो"

आरोग्य-भावना • २७

: ३१५ :

या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वते-ष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेडन् राजन्त्सोम ! प्रतिहव्या गृभाय ॥

ऋ० १-९१-४

"हे ऐश्वर्य स्वामिन् ! आरोग्य एवं स्वास्थ्य के लिये जितने भी साधन रूप धाम आप के दिव्य लोक, पृथ्वी लोक, पर्वत प्रदेश, वनस्पति-जीवन और जल-धाराओं में पाये जाते हैं; उन सब में से किसी के द्वारा भी हमारा अनादर न करते हुए ही हमारी जीवन हवियों को ग्रहण करो"

: ३१६ :

इद-मापः प्रवहत यत् किं च दुरितं मयि ।
यद्वाह-मभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥

ऋ० १०-९-८

"पानी की ये धारायें उस सब मैल-रोग-दुर्भाव को बहा ले जायें जो मेरे शरीर पर पाया जाता है। जो कुछ भी मैंने अपना अभिद्रोह अथवा दुरुपयोग या मिथ्या उपयोग किया है; उस से पैदा होने वाले सभी रोगों को यह नष्ट करने वाली हों"

: ३१७ :

अयं मे हस्तो भगवा-नयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥

ऋ० १०-६०-१२

"मेरा यह हाथ भाग्यशाली हो, मेरा यह हाथ सौभाग्यशाली हो, मेरा यह हाथ सारे संसार के लिये सुख का साधन हो और मेरा यह हाथ प्रत्येक को छूता हुआ आरोग्यता का देने वाला हो"

: ३१८ :

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥

ऋ० १०-१३७-७

"दसों अंगुलियों वाले हाथों से, वाणी से पूर्व ही चलने वाली जीभ से और सभी रोगों को नष्ट करने वाले अपने इन्हीं दोनों हाथों से तुम्हारा स्पर्श करते हैं—हमारे हाथों का मानो सुख-स्पर्श ही सब रोगों को नष्ट करने वाला हो"

: ३१९ :

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ।

ऋ० १०-९७-१५

"जो फलवाली, बेफली, फूलों वाली अथवा बेफूलों की महाप्रभु द्वारा पैदा की हुई ये वनस्पतियें हैं; वे सब-की-सब हमें रोगों-रोगजन्तुओं से बचाने वाली हों"

: ३२० :

मुञ्चन्तु मा शपथ्या-दथो वरुण्या-दुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद्देव किल्बिषात् ।।

ऋ० १०-९७-१६

"वे हमें मानस रोगों से वचाने वाली हों, वे जलीय रोगों से भी वचाने वाली हों, वे हमें द्वन्द्वज रोगों से बचाने वाली हों और वे सभी तरह के स्वप्न आदि कारणों द्वारा पैदा होने वाले रोगों से वचाने वाली हों"

: ३२१ :

मयोभूर्वातो अभिवातूस्र ऊर्जस्वती-रोषधी-रारि-शन्ताम् ।
पीवस्वती-जर्वीधन्याः पिवन्त्यवसाय पद्वते रुद्र मृड ।।

ऋ० १०-१६९-१

"हे रौद्र धर्म के रखने वाले परम देव ! यह चलाने वाला वायु नीरोगता लिये हुए चले, सूर्य की ये किरणें वनस्पतियों-ओषधियों को ओज, बल एवं वर्चस् के देने वाली हों और ये उन्नत हुए एवं प्राणिजगत् को सफल करने वाली वनस्पतियें भी जीवन की रक्षा के लिये ही उक्त रसों की रक्षा करने वाली हों; और हे स्वामिन् ! आप सब तरह से सुख-शान्ति के देने वाले हों"

उत्कर्ष-भावना ● २८

: ३२२ :

कदा मर्त्त-मराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवदगिर इन्द्रो अंग ।। ऋ० १-७४-८

"हे प्यारे ! कव यह इन्द्रिय राज असिद्ध-निकृष्ट-जीवनों को अपनी पद प्रगतियों से खूम की भांति विकसित करता या कुचलता है और कव यह जीवन अन्तर्वाणियों पर ध्यान देता हुआ उत्कर्ष की ओर अग्रसर होता है"।

: ३२३ :

स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वा-नस्माक-मायुः प्र तिरेह देव।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता-मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥

ऋ० १-९४-१६

"हे परमाग्नि देव ! आप ही हमारे सुन्दर सौभाग्य को जानते हुए हमें इस संसार सागर से पार करें; इस लिये प्रभो ! सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, आकाश अन्तरिक्ष समुद्र और प्रकृति माता की यह समस्त संतति हमारा महत्त्व बढ़ाने वाली हो, हमारा उत्कर्ष करने वाली हो"

: ३२४ :

सखाय-स्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्त्ति-मनेहसम्॥

ऋ० ३-९-१

"हे परम देव ! हे धर्मवृत्तियों को गिरने न देने वाले ! हे सौभाग्य के अधिष्ठातृ देव ! हे परम तेजस्वरूप ! हे सागर से पार उतारने वाले और हे पापरहित परमात्मान् ! आप जैसे दिव्य देव का आवाहन हम मित्रमंडल के मनुष्य इसी लिये करते हैं कि, हमारी रक्षा हो, हमारी वृद्धि हो और हमारा उत्कर्ष हो"

: ३२५ :

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः।
प्रजावन्तः सचेमहि॥ ऋ० १०-५७-६

"हे सोम ! आप के नियम-धर्म में और अपने जीवन-धर्म में मन-बुद्धि को लगाते हुए, हम सब पुत्र, पौत्र, एवं धन धान्यादि से पूर्ण हों—सर्वोत्कृष्ट जीवन के अनुगामी हों"

: ३२६ :

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः।
यस्य व्रते पुष्टपति-र्निविष्टस्तं सरस्वन्त-मवसे हवामहे॥

अथर्व० ७-४०-१

"जिस के नियम एवं व्रत में समस्त प्राणी जीवन व्याप्त है, जिस के नियम व्रत में सारे कर्त्तव्य कर्म चरितार्थ होते हैं और जिस के नियम व्रत में सम्पूर्ण पुष्टियों का स्वामी या आत्मा भी प्रवेश पाये हुए है; उसे परम ज्ञान के परम धाम परमेश्वर का हम अपने जीवनोत्कर्ष के लिये आवाहन करते हैं"

: ३२७ :

यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मि-न्नाजा भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ।।

ऋ० ७-८३-२

"जहां सभी मनुष्य अपनी विजय पताकाओं को उड़ाते हुए खड़े हो सकते हैं, जिस अवस्था में कुछ भी प्रियता-मोहमाया नहीं व्याप सकती और जहां पहुंच कर सुन्दर स्वरूपों वाले माया के ये सभी भुवन मानो कांपने लग जाते हैं अय मेरे विश्वात्मन् ! जीवन-संग्राम के उत्कर्ष-उन्नत पद और परम पद पर हमें पहुंचा दो उसी उत्कर्ष की ओर हमें प्रेरित करो"

जीवन-भावना

२८

: ३२८ :

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे ।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ।।

ऋ० १-९१-६

"हे जीवन सोम ! जब तुम हमारे जीवन जगत् के मानो स्वामी, हमारे प्रिय स्तोत्र एवं हमारी भक्ति भावनाओं के पति हो; तब हमें विश्वास है कि हम अकारण ही मर नहीं सकते ।"

: ३२९ :

त्वन्नः सोम विश्वतो रक्षा राज-न्नघायतः ।
न रिष्येत्त्वावतः सखा ।।

ऋ० १-९१-८

"हे सोमैश्वर्य के राजन् ! तुम हमें सम्पूर्ण पापाचार और पापाचारियों से बचाते हो; इसलिये हम समझते हैं कि तुम्हारे जैसा मित्र रखने वाला जीवन कभी मर नहीं सकता, कभी नष्ट नहीं हो सकता।"

: ३३० :

मा नो महान्त-मुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्त-मुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः॥

ऋ० १-११४-७

"हम में से किसी बड़े की मृत्यु न हो, किसी छोटे का मरण न हो, किसी कर्त्तव्य-परायण युवक का हनन न हो और किसी गर्भस्थ बालक की हत्या न हो। हमारे पिता आदि गुरुजनों का ह्रास न हो, हमारी माता, गुरु-पत्नी आदियों का हिंसन न हो ; और हे रुद्रदेव ! हमारे प्यारे शरीरों में से भी किसी शरीर-जीवन की हानि न हो।"

: ३३१ :

ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः।
य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥

ऋ० ४-८-५

"हे जीवन सर्वस्व ! हम तो अपने जीवनात्मा के लिये ठीक वैसे ही बनना चाहते हैं जैसे कि आत्मध्यानी अपनी ध्यान वृत्तियों द्वारा पूर्णकाम हुआ करते हैं और जो आत्म-जीवन को पुष्ट करते हुए ही स्वयं भी पुष्ट होने की भावना रखते हैं।"

: ३३२ :

तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत् सिन्धवः इषयन्तो अनुग्मन्।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः॥

ऋ० ५-४९-४

"अहिंसनीय जीवन यज्ञ की रचना करने वाला और होता रूप परमदेव परमात्मा हमें इष्ट जीवन का देने वाला हो और जीवन जगत् के सिन्धु भी पुष्टभावों को लेते हुए उसी जीवन का अनुगमन करने वाले हों। प्रभो !

आप हमें जिस ज्ञान का प्रवचन देते हैं उसके अनुसार आचरण करते हुए ही हम इस जीवन धन के स्वामी बनें और सम्पूर्ण बलों में तेजोरूप होकर प्रवेश करें।"

: ३३३)

द्यु मत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वी-ररातीः।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभि-र्धनस्य साता-वस्मां अविड्ढि ॥

ऋ० ६-४४-९

"हे इन्द्रदेव ! हमारे जीवनों में तेज पूर्ण ज्ञान का संचार हो, हमारे जीवनों में से प्रदान वृत्तियों-भक्तिहीन भावनाओं का बहिष्कार हो, ज्ञान किरणों की सहायता से पूर्ण आयु की धारणा हो और जीवन धन की पूर्ण प्राप्ति में हमारा पूर्ण अधिकार हो।"

: ३३४ :

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥

ऋ० ६-५२-४

प्रातःकाल में आने वाली उषा की प्रत्येक ज्योति मेरे जीवन निर्माण में सहायक हो, जीवन जगत् के ये भरपूर समुद्र मेरे सहायक हों, वे भूमि पर अचल भाव से ठहरने वाले पर्वत मेरे सहायक हो और इन्द्रिय-जीवन की पूर्णाहुति में मेरे माता-पिता आदि समस्त गुरुजन भी सहयोगी हों"

: ३३५ :

ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयि-मस्मे समिन्वताम् ॥

ऋ० ६-७०-६

"ये पृथ्वी एवं आकाश हमारे जीवनों में तेज के संचार करने वाले हों, जीवन विश्व के ज्ञानी एवं दानी माता-पिता ओज और तेज के संचार करने वाले हों और परस्पर सम्बन्ध रखने वाले सम्पूर्ण संसार के सुखरूप-लोक-

परलोक हम में जीवन-बल के संचार करने वाले हों। हम में जीवन-सौभाग्य जीवन-ज्योति और जीवन-धन की पराकाष्ठा हो।"

: ३३६ :

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम॥

ऋ० ७-४

"हे सौभाग्य स्वामिन्! हम इस समय भी सौभाग्य के अधिकारी हों, हम दिन की समाप्ति पर सौभाग्यशाली हों, हम दिन के मध्य में सौभाग्य के अभिमानी हों और जीवन के अन्त तक दैवी-भावों के धारण करने वाले हों।"

: ३३७ :

ऋभु-ऋभुभि-रभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाता-विन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्॥

ऋ० ७-४८

"हम जीवन ज्ञानियों के साथ मिलकर जीवन-ज्ञानी हों, आत्म ज्ञानियों की कृपा से आत्म-ज्ञानी हों और बलवानों की सहायता से बलवान् हों। हमारा जीवन-बल हमारी रक्षा करने वाला हो तो, जीवन-यज्ञ की पूर्णता में इन्द्र देव का सहयोग पाते हुए हम लोग वृत्र (अजीवन शक्ति) का पराजय कर देंगे।"

: ३३८ :

अस्माकं सुरथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये।
न यं धूर्वन्ति धूर्त्तयः॥

ऋ० ८-४

"इस संसार-यात्रा की पूर्ति के लिये हमारे जीवन-रथ को परमेन्द्र परमात्मा ऐसा बना दे कि, जिसे धूर्त्तियें—हिंसा वृत्तियें कँपा न सकें और इन से वह नष्ट न हो सके।"

: ३३९ :

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञ-मत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ ऋ० ८-९२-२१

"नाम, रूप स्थान, अथवा सात्विक-राजस-तामस, आदि तीन धारणा-वस्थाओं में इन्द्रिय देवों ने जो यह चेतन यज्ञ रूपी जीवन का विस्तार किया है; उसी जीवन यज्ञ की श्री-वृद्धि को ये वाणियें उन्नत करने वाली हों ।"

: ३४० :

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं भिषग्ब्रह्म सुन्वन्त-मिच्छति-इन्द्राय इन्दो परिस्रव ॥
ऋ० ९-११२-१

हमारी बुद्धियें भिन्न २ हैं हमारे विचार नाना रूप से विभक्त हैं और हम मनुष्यों के कर्त्तव्य-धर्म भी भिन्न-भिन्न हैं । बढ़ई लकड़ी के काम में रुचि रखता है, वैद्य रोगियों का ध्यान करता है और परमेश्वर तो जीवनैश्वर्य के उन्नत करने वाले को ही चाहता है—हे परमानन्द स्वरूप परमात्मन! आत्म जीवन के लिये दया करो ।"

: ३४१ :

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा
अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ।
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥
य० ३-१७

"हे परम तेज के स्वामिन् ! आप जीवन के पवित्र करने वाले हैं, जीवन द्वारा मेरी रक्षा हो; आप आयु के देने वाले हैं, आयु का मुझे दान हो; आप जीवन बल के देने वाले हैं, मुझ में जीवन बल की योजना हो । हे प्रकाशदेव ! मुझ में जितनी भी जीवन की कमियें हैं उनकी जीवन द्वारा ही पूर्ति हो—जीवन से ही जीवन की पूर्णता हो ।"

: ३४२ :

पुन-र्मनः पुनरायु आगन्मे पुनः प्राणः पुन-रात्मा म आगन्,

पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् ।
वैश्वानरो अदब्ध-स्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरिता-दवद्यात् ॥

य० ४-१

इस जन्म में प्रवेश करते ही "मेरा यह मन फिर मेरे निकट आया है, मेरी यह आयु फिर मेरे साथ आई है, मेरा यह प्राण-वायु फिर मेरे साथ हुआ है, मेरा यह आत्मा फिर इस यात्रा में प्रविष्ट हुआ है; इसी लिये मेरे ये नेत्र फिर इसे मिले हैं और मेरे ये कान फिर इसे प्राप्त हुए हैं। सर्व विजयी सर्वव्यापक और सर्वरक्षक परमाग्निदेव परमात्मा हमारे जीवनों की रक्षा करने वाला हो—अकथनीय पापों से बचाने वाला हो।"

: ३४३ :

आयु-र्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षु-र्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ।
प्रजापतेः प्रजा अभूम स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम ॥

य० ९-२१

"आयु की जीवन के साथ ही कल्पना हो, प्राण की कल्पना जीवन के साथ ही हो, नेत्रों की धारणा जीवन के साथ ही हो, कानों की समाप्ति जीवन के साथ ही हो, पृष्ठवंश की समाप्ति जीवन के साथ ही हो और जीवन का अन्त भी जीवन के साथ ही हो। हम प्रजापति परमेश्वर की प्रजा बनें, स्वर्गीय भावनाओं का जीवन में प्रवेश हो और हम अमर प्रभु की कृपा से अमृत हों।"

: ३४४ :

पूर्णा पश्चा-दुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥

अथर्व० ७-८०-१

"आगे से भी पूर्ण है, पीछे से भी पूर्ण और मध्य से भी पूर्ण है; और पूर्ण मान के रखने वाली वही पूर्ण प्रमा-परमात्म शक्ति ही सर्व रूप से सर्वत्र विजयशालिनी हुई है। उसी परम दिव्य तेजःशक्ति में अपनी दिव्य

धारणाओं एवं महत्ताओं के साथ वास करते हुए हम जीव स्वर्गीय सुख के परले सिरे पर पहुंच कर पूर्ण तेज के साथ आनन्द मनायेंगे।"

: ३४५ :

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥

अथर्व० ११-४-२४

"जो इस सम्पूर्ण जन्म का साथी है, जो इन सारी चेष्टाओं गतियों का आधार है और जो दिन रात निरालस रूप से अपने काम में लगा रहता है; वह प्राण जीवन नियमपूर्वक धैर्य के साथ जन्मभर मेरा साथ देने वाला हो।

: ३४६ :

मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधामाः ।
असीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथ-मा वदेम ॥

अथर्व० १२-२-३०

"हम मृत्यु की चालों को रोकते हुए, दीर्घ तथा उच्च आयु को धारण करते हुए ही संसार यात्रा में अग्रसर हों; हम मृत्यु को परे ढकेलते हुए सौम्य भाव से मिलने वाले हों और इस प्रकार जीवन व्यतीत करते हुए वेद ज्ञान का प्रचार करने वाले हों।"

सुख शान्ति भावना ● ३०

: ३४७ :

यदंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत् सत्य-मंगिरः ॥

ऋ० १-१-६

"अय प्यारे ! प्रकाशदेव ! तुम जो अपने भक्तों के लिये सुख-शान्ति का विस्तार किया करते हो, यह तुम्हारी ही सत्य स्वरूपता है-तुम्हारे ही सत्य-स्वरूप होने का प्रमाण है।"

: ३४८ :

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥

ऋ० १-८९-४

"अय माता पिता ! यह वायु हमारे लिये सुख रूप से चलने वाला हो, यह पृथ्वी माता और पिता रूप आकाश हमारे लिये सुख रूप औषध हो और ये ज्ञानी जन हमारे लिये सुख-शान्ति का उपदेश करने वाले हों। आप सद्विचार पूर्वक अपनी सन्तति की भावनाओं को ग्रहण करें और उसके सुख साधन में सहायक हों।"

: ३४९ :

भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं साय-मस्तु नः ।
भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः ॥

ऋ० ६-१२८-२

"हमारे लिये दिन के मध्य में भी सुख-शान्ति का विस्तार हो, सायंकाल के समय भी सुख-शान्ति का विस्तार हो, दिन भर सुख-शान्ति का विस्तार हो, दिन-रात सुख-शान्ति का व्यवहार हो।"

: ३५० :

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्प-यंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥

अथर्व० १९-८-१

"जितने भी नक्षत्रों को अन्तरिक्ष में, आकाश में, जलों पर भूखण्डों पर, पहाड़ों पर और दिशाओं में सञ्चालित करता हुआ यह चन्द्र देव आवागमन करता रहता है, वे सब-के-सब हमारे लिये सुख-शाँति के लाने वाले हों।"

: ३५१ :

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सहयोगं भजन्तु मे ।
योगं प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं च ॥

अथर्व० १९-८-२

"प्रत्येक अठाइसवें नक्षत्र की गतियें हमारे लिये सुख रूप हों, सुखदायक हों और सहयोग में आने वाली हों। इनका योग क्षेम देने वाला हो और इनका क्षेम योग का लाने वाला हो।"

: ३५२ :

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्त-मिद-मुर्वन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वती-रापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ।।

अथर्व० १९-९-१

"हमारे लिये सम्पूर्ण आकाश शांतिमय हो, यह पृथ्वी शान्तिमय हो, विस्तृत अन्तरिक्ष शान्तिमय हो, सेंचने वाले पानी शांति देने वाले हों और समग्र वनस्पतियें सुख-शांति के विस्तार करने वाली हों।"

: ३५३ :

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ।।

अथर्व० १९-९-२

"हमारे पूर्वरूप (पूर्व जन्म कृत साधन) हमारे लिये शान्त हो, हमारा किया न किया हमारे लिये शान्त हो, जीवन जगत् का भूत और भविष्यत् काल हमारे लिये शांत हो; और यह रचनात्मक विश्व सम्पूर्ण रूप से हमारे लिये शांत हो।"

मोक्ष-भावना ● ३१

: ३५४ :

तन्न-स्तुरीप-मद्‌भुतं पुरु वारं पुरु त्मना।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ।।

ऋ० १-१४२-१०

"उस चौथे पद की, जो परम अद्भुत है, जो अनेक प्रकार से ग्रहण किये जाने योग्य है और जो अन्तिम पद है—हमारे जीवन धन की परम पुष्टि के लिए हमारी चाहना करता हुआ परम कारुणिक परमेश्वर मध्य भाग में प्रविष्ट होकर खोल दे. और हम आत्म ज्ञान की सहायता से उसमें प्रवेश पा सकें।"

: ३५५ :

तन्न-स्तुरीप-मध पोषयित्नु देव त्वष्ट-र्विरराण: स्यस्व ।
यतो वीर: कर्मण्य: सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकाम: ॥

ऋ० ७-२६

"हे जीवन जगत् के निर्माण करने वाले परम देव ! सर्वत्र रममाण होते हुए हमारी परम पुष्टि के उस चौथे पद को खोल दीजिये कि, जिस से आत्मा एक बार फिर वीरता, कर्मनिष्ठता' सद्बोध और युक्त ज्ञान को ग्रहण करता हुआ दिव्य कामनाओं की प्रेरणा से जीवन यात्रा आरंभ करता है ।"

: ३५६ :

तुरीयं नाम यज्ञियं यदा कर—स्तदुश्मसि ।
आदित् पतिर्न ओहसे ॥

ऋ० ८-८०-९

"हे परमदेव परमात्मन् ! तुम जिस चौथे पद को पूज्य एवं सर्वोत्तम बनाते हो, हम उसी की चाहना करते हैं; तुम ही वहाँ तक पहुँचने के लिये हमारे सर्वपति हो—सब तरह से रक्षक हो ।"

: ६५७ :

यत्र ज्योति-रजस्रं यस्मिंल्लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित-इन्द्रयेन्द्रो परिस्रव ॥

ऋ० ९-११३-७

"जहाँ जीवन ज्योति निरंतर जगमगाती रहती है, जिस लोक में सुख एवं शांति का ही साम्राज्य रहता है; अय जीवन जगत् के पवित्र करने वाले परमेश्वर ! मुझे उसी अमृत एवं अक्षित लोक में पहुंचा दे—अय आनन्दमय परमेश्वर ! मेरे जीवन—आत्मा के लिये चेतो ।"

: ३५८ :

यत्रानु कामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्त-स्तत्र मामममृतं कृधि-इन्द्रायेन्दो परिस्रव ।।

ऋ० ९-११९-३

"दिव्य लोक के तीनों दुःखों के अभाव रूप तीनों सुखों एवं दिव्य भावनाओं वाले जिस लोक में आत्मा का स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण होता है और जिस लोक में पहुंचकर सर्व लोक ज्योतिर्मय हो उठता हैं—अय मेरे स्वामिन् ! मुझे उसी लोक में अमर करो ! अय मेरे स्वामिन् ! मुझे उसी लोक में अमर करो, अय परमानन्द स्वरूप ! मेरे आत्मा के लिये अनुग्रह करो ।"

:३५९ :

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र मामममृतं कृधि-इन्द्रान्दो परिस्रव ।।

ऋ० ९-११३-१०

"जहाँ कामनायें भी निष्काम हो जाती हैं, जहाँ सौर तेज तक समाप्त हो जाता है, जहाँ आत्मधारणा और परम तृप्ति विराज रही है ! हे जीवन सर्वस्व ! उसी लोक में पहुँचाकर मुझे अमर कर दो—हे आनन्दघन ! इन्द्रात्मा के लिये द्रवित होवो ।"

: ३६० :

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामा-स्तत्र मामममृतं कृधि-इन्द्रायेन्दो परिस्रव ।।

ऋ० ९-११३-११

"जहाँ सुख, आनन्द, शाँति, मोद, एवं प्रमोद आदि विराज रहे हैं; जहाँ काम एवं कामनायें अपने अन्तिम लक्ष्य में चरितार्थ हो जाती हैं; अय मेरे जीवन जगत् के पिता ! मुझे उसी लोक में अमर करो और मेरे आत्मानन्द के लिये परम पूर्ति का दान दो ।"

: ३६१ :

अनृणा अस्मिन्ननृणा परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ॥

अथर्व० ६-११७-३

"हम इस लोक में ऋण मुक्त हों, उस लोक में ऋण रहित हों और तीसरे लोक—जन्म—में भी अनृणी ही रहें। ये जो दिव्य लोक की ओर ले जाने वाले अथवा मातृ लोक की ओर ले जाने वाले मार्ग हैं, उन सब को हम ऋण मुक्त होकर ही पार करें।

: ३६२ :

यस्मात् कोशा-दुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवा—स्तपसावतेह ॥

अथर्व० १९-७२-१

"ज्ञान की जिस अनन्त निधि से इस वेद-ज्ञान को हमने प्राप्त किया है, उसी परम निधि में इसे समर्पित करते हैं। जिस परब्रह्म के परम बल से अपने जीवन यज्ञ को पूर्ण किया है; उसी ज्ञान एवं तपोबल से—अय महात्मा जनो ! हम सब की परम पूर्ति का साधन भी हो"

: ३६३ :

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व० १९-७१-१

"द्विजों को पवित्र करने वाली वेद वाणी मेरे ही द्वारा स्तुति को प्राप्त हुई है। लोगो ! इस का सर्वत्र विस्तार करो और अपना जीवन, आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन एवं ब्रह्म तेज आदि आत्मा के संसार यात्रा सम्बन्धी सभी साधनों को मुझे अर्पण करो और उक्त माता का स्तवन करते हुए ब्रह्म लोक की यात्रा में प्रवृत्त होवो"

भूर्भुवः स्वः । तत्सवितु-र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।। य० ३६-३

"जो स्वयं सत् है, जो स्वयं चित् है, जो स्वयं मुक्त है और जो हमारी बुद्धियों को अपनी ओर प्रेरित करता है; हम उस महान् शुद्ध, महान् बुद्ध, महान् मुक्त, सर्वोत्पादक और परम देव परमात्मा के सर्वोत्कृष्ट तेज को धारण करते हैं"

: ३६५ :

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय चनमः
शिवाय च शिवतराय च ।।

य० १६-४१

"आनन्दोत्पादक परमात्मा के लिये प्रणाम हो, परमानन्द स्वरूप परमात्मा के लिये प्रणाम हो; परम सुखकारक परमात्मा के लिये प्रणाम हो, परम सुखसाधक परमात्मा के लिये प्रणाम हो; आनन्दमय परमात्मा के लिये प्रणाम हो, परमानन्दमय परमात्मा के लिये प्रणाम हो"

: ३६६ :

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।।

यजुः० ३५-१४

अन्धकार से पृथक्, प्रकाशस्वरूप, प्रलय के पीछे सदा वर्तमान, देवों में भी देव अर्थात् प्रकाश करने वालों में भी प्रकाशक, चराचर के आत्मा सर्वोत्तम प्रभु को हम प्राप्त हों ।

: ३६७ :

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ।। यजुः० ३३-३१

जिससे ऋग्वेदादि चार वेद प्रसिद्ध हुए हैं, जो दिव्य गुण वाला और सब जीवादि जगत् का प्रकाशक है, जिसको केतु अर्थात् वेद और जगत् से पृथक्

पृथक् रचनादि नियामक गुण प्रकाशित कर रहे हैं उस परमात्मा का विश्व विद्या की प्राप्ति के लिए हम लोग ध्यान करते हैं।

: ३६८ :

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष ७ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।

यजुः० ७-४२

जो देवताओं का भी अद्भुत बल है; जो मित्र (सूर्य), वरुण, तथा अग्नि का प्रकाश करने वाला है; जो द्युलोक, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष में भरपूर हो रहा है, जो जड़ एवं जंगम जगत् का आत्मा है, वह प्रभु हमारे हृदयों में प्रकाशित रहे।

: ३६९ :

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।

यजुः० ३६-२४

जो ब्रह्म सब का द्रष्टा, विद्वानों का परम हितकारक, जो सृष्टि के पूर्व, पश्चात् तथा मध्य में शुद्ध सत्यस्वरूप से वर्तमान रहता है, उसी ब्रह्म की कृपा से हम लोग सौ वर्ष तक देखें, जीवें, सुनें, उसी ब्रह्म का उपदेश करें और उसकी कृपा से किसी के आधीन न रहें। उसी प्रभु की कृपा से सौ वर्ष के उपरान्त भी हम लोग सुखी और स्वतंत्र रहें।

: ३७० :

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।

यजुः० ३६-३

ईश्वर सब की सत्ता का कारण, ज्ञानस्वरूप और आनन्दमय है। उसी विश्व के उत्पादक, दिव्य गुणधारी प्रभु के श्रेष्ठ तेज का हम लोग ध्यान करते हैं। वह प्रभु हमारी बुद्धि को उत्तम कामों में प्रवृत करें।

: ३७१ :

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।

यजुः० १६-४१

जो सुखस्वरूप, संसार के उत्तम सुखों को देने वाला, कल्याण-कर्त्ता, मोक्षस्वरूप, अपने भक्तों को सुख देने वाला और धर्मकार्यों में युक्त करने वाला, अत्यन्त मंगल रूप, मोक्षसुख का प्रदाता है, उस प्रभु को हमारा बारम्बार नमस्कार हो ।

: ३७२ :

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः ।।

ऋ० १-१६४-४६

वह एक है, परन्तु विद्वान् पुरुष अनेक प्रकार के नामों से उसका वर्णन रते हैं। उसको इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि के नाम से पुकारते हैं। ही दिव्य सुपर्ण गरुत्मान् है। उसी अग्नि रूप प्रभु को यम और मातरिश्वा हते हैं।

: ३७३ :

तदेवाग्निस्तदादित्य, तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।।

यजुः० ३२-१

वही अग्नि है, वही आदित्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र वही ब्रह्म है, वही अप् (सर्वव्यापक) और वही प्रजापति है ।

: ३७४ :

यस्य भूमि प्रमा अन्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व० १०-७-३२

भूमि जिसका पैर है और अन्तरिक्ष उदर है; द्युलोक को जिसने अपना र-बनाया है, उस महान् ब्रह्म को हमारा प्रणाम है ।

: ३७५ :

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्व० १०-७-३

सूर्य और बार-बार नया होने वाला चन्द्रमा जिसका नेत्र है, अग्नि क
जिस ने अपना-मुख बनाया है, उस परम ब्रह्म को हमारा प्रणाम है ।

: ३७६ :

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसो भवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्व० १०-७-३

वायु जिस का श्वास और प्रश्वास है, अंगिरस (प्रकाशमान किरणावली
जिसका नेत्र है, दिशाओं को जिसने ज्ञान का साधक (श्रोत्र) बनाया है उ
परम ब्रह्म को हमारा प्रणाम है ।

: ३७७ :

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्व० १०-८

जो भूत और भविष्य सब का अधिष्ठाता है, जिसका स्वरूप के
प्रकाश और आनन्द है उस महान् ब्रह्म को हमारा प्रणाम है ।

: ३७८ :

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतंकम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मंत्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥

अथर्व ४-१६

जो मनुष्य बैठा है या चलता है, जो दूसरों को ठगता है, जो छिप क
कुछ काम करता है, जो दूसरों पर अत्याचार करता है और दो आ
मिल कर जो कुछ गुप्त मंत्रणा करते हैं इन सब को तीसरा सर्वश्रेष्ठ
परमेश्वर जानता है ।

जन

: ३७९ :

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

ऋ० १०-१२१-१

प्रकाशस्वरूप प्रभु सृष्टि के पहले वर्तमान था और वह इस उत्पन्न हुए विश्व का एकमात्र प्रसिद्ध स्वामी था। उसी ने इस द्युलोक और पृथिवी को धारण किया हुआ है। उस सुखस्वरूप देव का हम त्याग द्वारा पूजन करते हैं।

: ३८० :

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

ऋ० १०-१२१-२

जो आत्मिक शक्ति और बल देने वाला है, सब जिसकी उपासना करते हैं, देव जिसकी आज्ञा में चलते हैं, जिसकी छाया अथवा शरण पाना अमर होना है और जिससे दूर होना ही मृत्यु है, अथवा जो मृत्यु का भी अधिष्ठाता है, उस सुख स्वरूप देव का हम त्याग द्वारा पूजन करते हैं।

: ३८१ :

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

ऋ० १०-१२१-३

जो अपने महत्त्व के कारण इस जड़ एवं जंगम जगत् का निश्चय रूप से एक मात्र राजा है, जो इस विश्व के द्विपद एवं चतुष्पद सभी पर शासन करता है, उस सुख स्वरूप देव का हम त्याग द्वारा पूजन करते हैं।

: ३८२ :

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

ऋ० १०-१२१-५

जिसने उग्र द्युलोक और दृढ़ पृथिवी को धारण किया है, जिसने स्व: (स्वलोक अथवा सुख) और मोक्ष को धारण किया है, जो अन्तरिक्ष में लोक लोकान्तरों को घुमाता हुआ धारण कर रहा है, उस सुखस्वरूप देव का हम त्याग द्वारा पूजन करते हैं।

: ३८३ :

समानी प्रपा सह वो ऽन्नभाग: समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभित: ॥

अथर्व० ३-३०-६

तुम्हारी जलशाला एक सी हो, अन्न का विभाजन साथ साथ हो, एक ही जुए में मैं तुम को साथ-साथ जोड़ता हूँ। जैसे पहिए के अरे नाभि में चारों ओर से जुड़े होते हैं वैसे ही तुम सब मिल कर ज्ञानस्वरूप प्रभु का पूजन करो।

: ३८४ :

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥

ऋ० १०-१९१-२

आपस में मिलो, संवाद करो, तुम्हारे मन एक ज्ञान वाले हों; जैसा कि पहले देवता (सूर्य चन्द्रादि) एक मन होकर अपने अपने भाग का सेवन कर रहे हैं अर्थात् अपना कर्तव्य करते हुए विश्व की स्थिति के कारण बने हुए हैं।

: ३८५ :

ईशावास्यमिद सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृध: कस्य स्विद्धनम् ॥

यजु:० ४०-१

इस चलायमान संसार में जो कुछ चलता हुआ है वह सब ईश्वर से आच्छादित है। इस लिए त्याग भाव से भोग करो और किसी के भी धन का लालच मत करो।

: ३८६ :

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥

यजुः० ४०-३

जो आत्मघात करने वाले पुरुष हैं वे यहां से शरीर छोड़ कर उन लोकों में जाते हैं जो प्रगाढ़ अन्धकार से भरे हुए हैं और असुरों के योग्य हैं ।

: ३८७ :

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सगुप्सति ॥

यजुः० ४०-६

जो आत्मा में समस्त प्राणियों को और समस्त प्राणियों में आत्मा को अनुभव करता है वह किसी से घृणा नहीं करता ।

: ३८८ :

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥

यजुः४०-७

जिस अवस्था में एकता का दर्शन करने वाले ज्ञानी पुरुष को सब प्राणियों में आत्मतत्व ही प्रतीत होने लगता है, उस अवस्था में उसे मोह और शोक नहीं रहता ।

: ३८९ :

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये ऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या्ँरताः ॥

यजुः० ४०-९

जो केवल असम्भूति की उपासना करते हैं वे घोर अंधकार में प्रवेश करते, किन्तु जो सम्भूति के पीछे लगे हुए हैं वे उनसे भी बढ़ कर घने अन्धकार को प्राप्त करते हैं ।

: ३९० :

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥

यजु:० ४०-१०

सम्भूति और असम्भूति दोनों के भिन्न भिन्न फल हैं—ऐसा हमने उन तत्वदर्शियों से सुना है जिन्होंने हमें इसका रहस्य बतलाया है।

: ३९१ :

सम्भूतिंच विनाशंच यस्तद्वेदोभयँसह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥ यजु० ४०-११

सम्भूति और असम्भूति (विनाश) दोनों को जो साथ साथ जानता है, वह विनाश से मृत्यु को तर कर सम्भूति से अमृत को प्राप्त करता है।

: ३९२ :

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये ऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँरताः ॥

यजु:० ४०-१२

जो ज्ञानविहीन कर्मकाण्ड रूप अविद्या की उपासना करते हैं वे घने अन्धकार में प्रवेश करते हैं; किन्तु जो केवल विद्या में लगे हुए हैं, वे उनसे भी बढ़ कर अन्धकार को प्राप्त करते हैं।

: ३९३ :

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः ॥
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ यजु:० ४०-१३

अविद्या और विद्या दोनों के भिन्न-भिन्न फल हैं—ऐसा उन तत्वदर्शियों से सुना है, जिन्होंने हमें यह रहस्य बतलाया है।

: ३९४ :

विद्यांचाविद्यांच यस्तद्वेदोभयँसह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

यजु:० ४०-१४

विद्या और अविद्या दोनों को जो एक साथ जानता है—ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड दोनों में एक साथ निरत होता है—वह अविद्या को कर्मकाण्ड से, मृत्यु को तर कर विद्या से, ज्ञान-काण्ड से, मोक्ष को प्राप्त होता है।

: ३६५ :

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥

जो जागता है उसे ऋचायें चाहती हैं, जो जागता है उसे साम प्राप्त होते हैं, जो जागता है उसे यह सोम कहता है :—"मैं तेरा हूँ। तेरी मित्रता में ही मेरा निवास है—तू मुझे जहां बुलावेगा मैं वहीं पहुँच जाऊँगा।"

: ३६६ :

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

यजुः० १६-३०

व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा (योग्यता, निपुणता), दक्षिणा से श्रद्धा और श्रद्धा से सत्य प्राप्त किया जाता है।

: ३६७ :

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

यजुः० ३१-१८

मैं इस महान्, सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप, अन्धकार से पृथक् परमात्मा को जानता हूँ। उसी को जान कर प्रत्येक प्राणी मृत्यु से छुटकारा पाता है। मोक्ष के लिए इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

: ३९८ :

अपाम सोमं अमृता अभूम अगन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ।।

मैंने सोम का पान किया है, मैं अमर हो गया हूँ; मैंने प्रकाश पा लिया है; मैंने देवों (दिव्यगुणों) को प्राप्त कर लिया है। अतः अब निश्चय रूप से शत्रु हमारा क्या कर सकता है और मरणशील व्यक्ति की हिंसा, हे अमृत देव ! मेरा क्या बिगाड़ सकती है ?

: ३९९ :

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ।। (यजुर्वेद अ० ३०-मं० ३)

हे देव ! आप सूर्यादि सकल जगत् और वेद विद्या का प्रकाश करने वाले हो, तथा सब आनन्दों के देने वाले हो। हे सर्वशक्तिसम्पन्न ! आप सकल जगत् के उत्पादक हो। हमारे सब दुःखों और सब दुर्गुणों को आप अपनी कृपा से दूर कर दीजिये। तथा सब दुःखों से रहित जो निःश्रेयस का सुख अर्थात् मोक्ष है, और जो सत्यविद्या की प्राप्ति द्वारा अभ्युदय-सुख का होना है, अर्थात् चक्रवर्त्तिराज्य, इष्टमित्र धन, पुत्र, स्त्री और शरीर से अत्यन्त सुख का होना है—इन दोनों प्रकार के सुखों को आप हमारे लिये सब दिनों में प्राप्त कराइये।

: ४०० :

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।
यजु० अ० २५, मं० १३

हे जगदीश्वर ! आप अपनी कृपा से वेदविद्या के दाता तथा अपने स्वरूप का विज्ञान देने वाले हो। आप शरीर, इन्द्रिय, प्राण आत्मा और मन में पुष्टि, उत्साह, पराक्रम और दृढ़ता के दाता हो सब विद्वान् लोग आप की ही उपासना करते आए हैं, और आप का उत्तम अनुशासन जो कि वेदोक्त

शिक्षा हैं उसे सदा स्वीकार करते आये हैं। आप का आश्रय मोक्षसुख का साधन है, और आप का अनाश्रय अर्थात् परित्याग जन्म-मरण रूप दुःखों का कारण है। आप सुखस्वरूप हैं। सब प्रजाओं के पति हैं। आप सच्चे देव हैं। आप की प्राप्ति के लिये प्रेम-और-भक्तिरूपी सामग्री द्वारा हम आप का नित्य भजन करें, नित्य आप की उपासना करें। हे प्रभो ! यह वरदान हमें दो।

: ४०१ :

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ यजु० अ० ३६, मं० १७

हे सर्वशक्तिमान् भगवान् आप की भक्ति और कृपा से सूर्यादि लोकों का प्रकाश तथा विद्याविज्ञान सब दिन हम को शान्ति प्रदान करें, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल ओषधियाँ और वनस्पतियाँ हमें शान्तिदायक हों। संसार के सब विद्वान् और दिव्यशक्तियाँ हमें शान्ति देवें। वेदशास्त्र तथा संसार के सब पदार्थ हमें शान्ति प्रदान करें। हे भगवन् ! हमारे जीवनों में शान्ति ही शान्ति हो। हे प्रभो ! ऐसी सुखमयी शान्ति हमें सदा प्राप्त रहे।

: ४०२ :

ओ३म् यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥

यजु० अ० ३६, मं० २२

हे अभयदान के दाता परमेश्वर ! देश देशान्तरों तथा दिग्दिगान्तरों में आप की ही शक्ति और आप का ही सामर्थ्य कार्य कर रहा है। हे प्रभो ! इन देश देशान्तरों तथा दिग्दिगान्तरों से हमें अभय प्रदान कीजिये। हे शान्ति के स्रोत ! आप की कृपा से प्रजाजनों से समग्र हमारे लिये शान्ति की लहरें उठें। हे रक्षक ! पशुओं तथा प्राणियों से हमारी रक्षा कीजिये।

: ४०३ :

ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि देहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ यजु० अ० १९, मं० ९

हे परमेश्वर ! आप अनन्त विद्या आदि गुणों से प्रकाशमय हैं हमारे हृदयों में भी आप विज्ञान का प्रकाश कीजिये। आप अनन्तपराक्रम से युक्त हैं, हमें भी पूर्ण पराक्रम से युक्त कीजिये। हे महाबलेश्वर ! आप अनन्त बल दीजिये। हे सर्वशक्तिमान् ! आप सत्य और विद्या के बल वाले हैं, आप अपने अनुग्रह से हमारे शरीरों और आत्माओं में भी पूर्ण बल के भण्डार हैं, हम में भी अपनी करुणा से सत्य और विद्या का बल स्थापित कीजिये। हे परमेश्वर ! आप दुष्टों पर क्रोध करने वाले हैं, हमें भी दुष्टों पर क्रोध करने का स्वभाव प्रदान कीजिये। हे सहनशील ईश्वर ! आप हमें सुख-दुःख, हानि-लाभ, सरदी-गरमी, भूख-प्यास आदि को सहन करने की शक्ति प्रदान कीजिये।

: ४०४ :

ओ३म् इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावा पृथिवीभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुधर्मा मेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥

(यजु० अ० ३८, मं० १४)

हे भगवन् ! आप की दया से हमारी शुभ कर्म करने की ही इच्छा हो और आप हमारे शरीरों को उत्तम अन्न द्वारा सदा परिपुष्ट कीजिये। आप अपनी कृपा से हमें उत्तम पराक्रम से युक्त तथा प्रयत्नशील कीजिये। हे आदिगुरु ! वेदविद्या के पढ़ने-पढ़ाने और उस से यथावत् उपकार लेने में हमें पूर्ण सामर्थ्य प्रदान कीजिये, ताकि हम उत्तम ब्राह्मण बन सकें। हे परमेश्वर! आपके अनुग्रह से हम लोग चक्रवर्त्तिराज्य को प्राप्त करें, और शूरवीर सेना से युक्त होकर क्षत्रियवर्ण के अधिकारी बनें। हे भगवन् ! जैसे पृथिवी, सूर्य, अग्नि, जल और वायु आदि पदार्थों से सब जगत् का उपकार होता है वैसे कलाकौशल, विमान आदि साधनों द्वारा हम सृष्टि का उपकार करने वाले हों। हे न्यायकारी ईश्वर ! हमें न्यायबुद्धि प्रदान कीजिये। हे भगवन् आप जैसे निर्वैर होकर सब से वर्ताव करते हैं वैसे ही हम भी वैररहित हो कर सब से बर्ताव करें। हे परमकारुणिक ! हमें उत्तम राज्य, उत्तम धन, और शुभ-गुण प्रदान कीजिये। हे परमेश्वर ! हमारे राष्ट्र में वेदविद्या से सम्पन्न उत्तम

ब्राह्मण हों, हमारे राज्य और क्षत्रियवर्ण का आप धारण-पोषण कीजिये, वैश्यवर्ण और हमारी प्रजा का धारण-पोषण कीजिये। अर्थात् सर्वोत्तम गुणों को आप हम में स्थापित कीजिये।

: ४०५ :

ओ३म् यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

अथर्व० का० १०, सू० ८)

हे भगवन्! आप भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् की सब घटनाओं और व्यवहारों के ज्ञाता हैं, आप समग्र जगत् के रचयिता, पालनकर्त्ता, तथा प्रलय-कर्त्ता हैं, आप सब जगत् के अधिष्ठाता हैं, आप केवल सुखस्वरूप हैं, आप में दुःख का लेशमात्र भी नहीं, आप मोक्षसुख के दाता, तथा व्यावहारिक सुखों के प्रदाता हैं, आप ज्येष्ठशक्ति हैं, महासामर्थ्यवान् हैं। हे परब्रह्म! आप को अत्यन्त प्रेम और अगाध श्रद्धाभक्ति से हम सदा नमस्कार करते हैं।

: ४०६ :

ओ३म् इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

ऋ० १-१६४-४६)

अर्थात् जो एक अद्वितीय सत्य ब्रह्म है, विद्वान् लोग उसी के नाम इन्द्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा आदि कहते हैं।

: ४०७ :

अकामो धीरो अमृतः स्वम्यभू, रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्।

अथ० १०-८४४

शब्दार्थ— (आकाः) निष्काम (धीर) धीर अमृतः) अमर (स्वयम्भु) अपने आप वर्त्तमान (रसेन) रस से (तृप्तः) सन्तुष्ट (न) नहीं (कुतःचन) कहीं से (ऊनः) न्यून (तम्) उसको (एव) ही (विद्वान्) जानता हुआ

(विभाय) डरता है न-नहीं (मृत्युः) मृत्यु से (आत्मानम्) आत्मा को (धीरम्) धीर को (अजरम) जरा रहित को (युवानम्) युवाको।

भाषानुवाद—(जीवात्मास्वभावत:) निष्काम, धीर, अमर, अपने आप वर्त्तमान (परमात्मा के प्रेम) रस से तृप्त है, और इसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है। इसे ही आत्मा का धीर, जरारहित तथा (नित्य) युवा जानता हुआ (मनुष्य) मृत्यु से भय नहीं करता।

: ४०८ :

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः।
तन्मयि प्रजा पतिर्दिवि द्यामिव दृहंतु ॥

अथर्व० ३-३६-३

शब्दार्थ—(मयि) मुझ में (वर्चः) प्रताप (अथो) और (यश) कीर्ति (अथो) और (यज्ञस्य) यज्ञ का (यत्) जो (पय) सार पदार्थ (तत्) वह (मयि) मुझ से (प्रजापति) प्रजाओं के स्वामी परमात्मा (दिवि) द्यौलोक में (द्याम) सूर्य को (इव) जैसे (दृहंतु) दृढ़ करे।

भाषानुवाद—मुझमें प्रताप (विद्यमान रहे) और मुझ में कीर्ति (वर्त्तमान रहे) और जो यज्ञ का सार पदार्थ है वह भी मुझे (प्राप्त रहे)। प्रजाओं का पालन करने वाला परमात्मा मुझ में इसे ऐसा दृढ़ करे जैसा सूर्य द्युलोक में स्थापित है।

—: ० :—

भारी संख्या में बांटें

अनुपम वैदिक साहित्य

१. **वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी व अंग्रेजी)**
हिन्दी और अंग्रेजी में एक साथ, प्रत्येक मंत्र के प्रत्येक शब्द की अन्वय सहित व्याख्याः अंग्रेजी और हिन्दी में मूल्य २रु० । सजिल्द का मूल्य २॥रु० ।

२. **वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण**
(केवल हिन्दी में) इसमें प्रत्येक मंत्र के साथ उसका अर्थ दिया गया है। २८ पौंड बढ़िया कागज, तिरंगा बढ़िया आवरण, महर्षि का तिरंगा चित्र । २८ पौंड कागज, चुने हुए भजन । ८४ पृष्ठ । मूल्य ६० पैसे । ५०) सैकड़ा ।

३. **Ten Commandments of the Arya Samaj** स्व० पण्डित चमूपति एम० ए० लिखित आर्य समाज के दस नियमों की पूर्ण प्रभावकारी व्याख्या, जिसका मूल्य पहले १ : ५० था अब केवल एक रु० प्रति/ ७)५० की १० प्रतियाँ मिल रही हैं । पुस्तक में महर्षि का चार रंग में चित्र अपूर्व है ।

४. **Vedic Way of life** —ला० दीवान चन्द कृत—१)

५. **Layers of life** —ला० दीवान चन्द कृत—२)

६. **Message of the Arya Samaj to the Universe**
—भारतेन्द्र नाथ लिखित ३० पैसे । २५) सैंकड़ा

७. **Vedic Sandhya & Prayer** संध्या और प्रार्थना दोनों की हिन्दी अंग्रेजी में व्याख्या ।
३० पैसे/२५) सैंकड़ा

८. **वैदिक गीता (भाष्य)** २)
महान् विद्वान् स्व० आत्मानन्द जी का यह गीता भाष्य प्रचार की दृष्टि से अनुपम है । कर्म और प्रेरणा के अद्भुत संगम इस भाष्य की अपनी विशेषता है । योगेश्वर कृष्ण का तिरंगा चित्र और उनका वीर वेश देखकर आप मुग्ध हो जायेंगे ।

९. **योगेश्वर कृष्ण**—भगवान कृष्ण का यह जीवन चरित्र लाखों व्यक्तियों तक पहुँचाना चाहिये । ब्र. जगदीश विद्यार्थी एम.ए. लिखित मूल्य ४० पैसे । ३०) सैकड़ा ।

१०. **क्रान्तिकारी दयानन्द**—युग प्रवंतक दयानन्द के क्राँतिकारी स्वरूप से सभी को परिचित कराने हेतु पुस्तक अत्यंत उपयोगी है । प्रोफ़ेसर संतराम एम० एस० सी० लिखित । मूल्य ७५ पैसे ।

११. यज्ञ प्रसाद —महात्मा आनन्द स्वामी कृत मूल्य ४० पैसे। ३०) सैकड़ा आप यज्ञ करते होंगे तो यज्ञ के बाद प्रसाद भी बाँटते ही होंगे। यह प्रेरक महात्मा जी का रचना प्रसाद है। इसे मंगाइये और यज्ञ भावना फैलाने हेतु वितरण कीजिए।

१२. गीत मंजरी...८० पैसे
ईश्वर भक्ति के गीत और प्रभु से प्रार्थना करते हुए यदि आप सचमुच अपने आप को भुलाना चाहते हैं तो गीत मंजरी का सहारा लीजिए। पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है।

१३. ज्ञान प्रकाश —हरिशरण सिद्धाँतालंकार मूल्य १)५० पैसे
—दीनानाथ सिद्धाँतालंकार
आर्य समाज के २ विद्वानों की लेखनी से सत्यार्थ प्रकाश का सार जिस आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है वह प्रचार के लिए अनुपम है। सत्यार्थ प्रकाश के गूढ़ रहस्यों तक पहुंचने के लिए ज्ञान प्रकाश पढ़िए, और प्रसारित कीजिए—१०)की १० प्रति और ७५)सैकड़ा। शीघ्र मंगाइए, स्टाक बहुत थोड़ा शेष है।

१४. वेद ज्योति—४०० मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह—मूल्य ३)।

१५. प्रार्थना मंत्र व्याख्या—पं हरिशरण जी सिद्धांतालंकार लिखित प्रार्थना मंत्रों की अनुपम व्याख्या। मूल्य ४० पैसे

१६. भारत की अवनति के ७ कारण—ब्र० जगदीश एम० ए० की लोह लेखनी द्वारा लिखित पृष्ठ ६८। मूल्य ४० पैसे। ३५)। सैकड़ा २५०) हजार।

१७. Light of Truth...७५ पैसे।

यह सम्पूर्ण साहित्य भारी संख्या में मंगा कर
अपने क्षेत्र पर वेद पताका लहराइए।

जन ज्ञान प्रकाशन

१५६७, हरध्यान सिंह रोड, (निकट ३१ नाई वाला)
करौल बाग नई दिल्ली-५

अपने आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर कुल व्यय का २० प्रतिशत साहित्य वितरण पर लगाइए।

"जन-ज्ञान" के नियम

१. "जन-ज्ञान" मासिक पत्रिका है। इसका उद्देश्य—(अ) महर्षि दायनन्द के लक्ष्य को पूर्ण करना। (ब) संसार के प्रत्येक व्यक्ति तक वेद का पावन संदेश पहुँचाना। (स) अज्ञान, पाखण्ड की समाप्ति के लिए प्रत्येक सम्भव पग उठाना है।

२. "जन-ज्ञान" में व्यक्तिगत राग द्वेष और पार्टी वाजी के लेख व सूचनायें किसी भी स्थिति में प्रकाशित नहीं किए जायेंगे।

३. वैदिक सिद्धांतों के विरुद्ध विज्ञापनों का प्रकाशन भी किसी भी स्थिति में नहीं होगा।

४. "जन-ज्ञान" का वार्षिक शुल्क दस रुपया, एक प्रति ८० पसे है। सदस्यों को विशेषाँक वार्षिक मूल्य में ही दिए जायेंगे।

५. प्रत्येक माह की दो तीन तारीख को 'जन-ज्ञान' भेज दिया जाता है। यदि दस तक भी न मिले तो समझिए आपका जन-ज्ञान' कोई और पढ़ रहा है। दस तारीख तक 'जन-ज्ञान' न मिले तो अपने पोस्ट आफिस को पत्र लिखें और एक प्रति हमें भेजें। पत्र प्राप्त होने पर 'जन-ज्ञान' दुवारा बिना टिकट लगाये वैरंग भेजा जाएगा। बीस तारीख के बाद किसी भी शिकायती पत्र पर ध्यान नहीं दिया जाएगा।

६. विशेषांक सुरक्षित मंगाने के लिए पचहत्तर पैसे के टिकट पन्द्रह दिन पूर्व आने चाहियें। विशेषांक दुबारा न भेजे जायेंगे।

७. किसी भी प्रकार का पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।

८. समस्त चैक, मनीआर्डर आदि "जन-ज्ञान-प्रकाशन" के नाम भेजें।

९. नए सदस्य धन भेजते समय 'नया सदस्य' शव्द अवश्य लिखें और मनिआर्डर कूपन पर पूरा पता अवश्य लिखें।

१०. "जन-ज्ञान" के सदस्यों को 'जन-ज्ञान प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य पौने मूल्य में दिया जायेगा।

प्रबन्धक

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५९७, हरध्यानसिंह रोड़, करौल बाग,
नई दिल्ली-५

फोन : ५६६६३९

अराष्ट्रीय ईसाई तत्वों के विरुद्ध
११ पुस्तकें तैयार हैं

इन्हें मंगाइए : बांटिए और देश को बचाइए

१. ईसाई पादरी उत्तर दें। —स्वामी श्रद्धानन्द ३) सैकड़ा
२. A challange to the christian Faith " ३) सैकड़ा
३. Bible in the Balance —चार्ल्स स्मिथ १५) सैकड़ा
४. ज्ञान विज्ञान के शत्रु ईसाई मत —ओमप्रकाश त्यागी १०) सैकड़ा
५. पोप की सेना का भारत पर हमला — भारतेन्द्रनाथ १०) सैकड़ा
६. ईसाइयों की प्रचार प्रणाली —जगत् कुमार १०) सैकड़ा
७. पादरियों को चुनौती —स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती १०) सैकड़ा
८. बाइबल को चुनौती —ओम्प्रकाश त्यागी १५) सैकड़ा
९. और पादरी भाग गया —ओम्प्रकाश त्यागी १०) सैकड़ा
१०. ईसाइयत की वास्तविकता —शाँति प्रकाश महोपदेशक १०) सैकड़ा
११. बाइबल कसौटी पर········ चार्ल्स स्मिथ १५)सैकड़ा

अधिक से अधिक मगांकर बांटें।

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५६७, हरध्यान सिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

उदारता पूर्वक सहयोग दें

कुछ क्षेत्रों में ईसाई विरोधी साहित्य तो चाहिए पर वे धन नहीं भेज सकते, अतः वहाँ साहित्य भेजने के लिए सहयोग चाहिए। आप अपनी ओर से ईसाई प्रभावित-क्षेत्रों में वितरण के लिए अधिक से अधिक साहित्य भिजवायें। यह राष्ट्र की महत्वपूर्ण सेवा होगी। इसके लिए जितनी सहायता हमें प्राप्त होगी उतना ही साहित्य हम भेजते जायेंगे उदारता पूर्वक सहयोग दीजिए।

राकेश रानी
—सम्पादक

हैं कोटि प्रणाम हे महाप्रभु !

जन-जन मन में गूँज रही है, ऋषि दयानन्द की जय जयकार,
कण-कण में नव ज्योति जगाती, फ़ैल रही है जय जयकार।
आओ मिलकर गीत सुनायें, जीवन-गाथा पढ़ें, पढ़ायें,
रक्षक था जो मानवता का, उसका हम सन्देश सुनायें,

महा मनुज था, देवदूत वह, सत्य-ज्ञान का दिव्य पुजारी,
शान्ति-सुधा का सबल प्रसारक, दयानन्द सबका उपकारी।
दयानन्द सबका हितकारी, मानवता का उन्नायक था,
प्राण-प्राण का जीवनदाता वेद ज्ञान का मधु गायक था।

प्रभु का सच्चा पुत्र दयालु, राह दिखाई पुनः ज्ञान की।
भटक रहे थे, सिसक रहे थे, चाह जगाई पुनः ज्ञान की।
ज्ञान धर्म था, ज्ञान कर्म था, ज्ञान लक्ष्य का किया प्रसार,
वेद सुधा देकर ऋषिवर ने, पाखंडों पर किया प्रहार।

जगमग-जगमग ज्योति जगी है, जाग उठा सारा संसार,
कांप उठी पापों की गद्दी, काँपा छलना का व्यापार,
सत्य ज्ञान की किरणें जागीं, जीवन का सौन्दर्य जगा है,
न्याय जगा-प्रभु ज्ञान जगा, धरती का सोया भाग्य जगा है।

ऋषि दयानन्द तेरी गाथा से, जीवन में जय-भाव जगे हैं,
अन्तर का गहरा अन्धकार अब दूर हुआ जय-गान जगे हैं।
हैं कोटि प्रणाम तुम्हारे पावन चरणों में, ऋषि राज हमारे,
है कोटि नमन, हे महापुरुष ! हे युग रक्षक ! सच के रखवारे।

—राकेशरानी

भोगवाद के अज्ञान-अंधकार और महानाश के मार्ग से मनुष्य जाति को हटा सच्ची शान्ति और आनन्द के अध्यात्म मार्ग पर चलाने वाले—

युग-पुरुष देव दयानन्द का

सचित्र जीवन-परिचय

●

गुजरात प्रान्त के टंकारा ग्राम में श्री करषन लाल जी त्रिवेदी के घर सन् १८२४ में एक बालक ने जन्म लिया। इस बालक का नाम "मूलशंकर" रखा गया। जो आगे चलकर राष्ट्र और मनुष्य जाति का महान् उद्धारक बना।
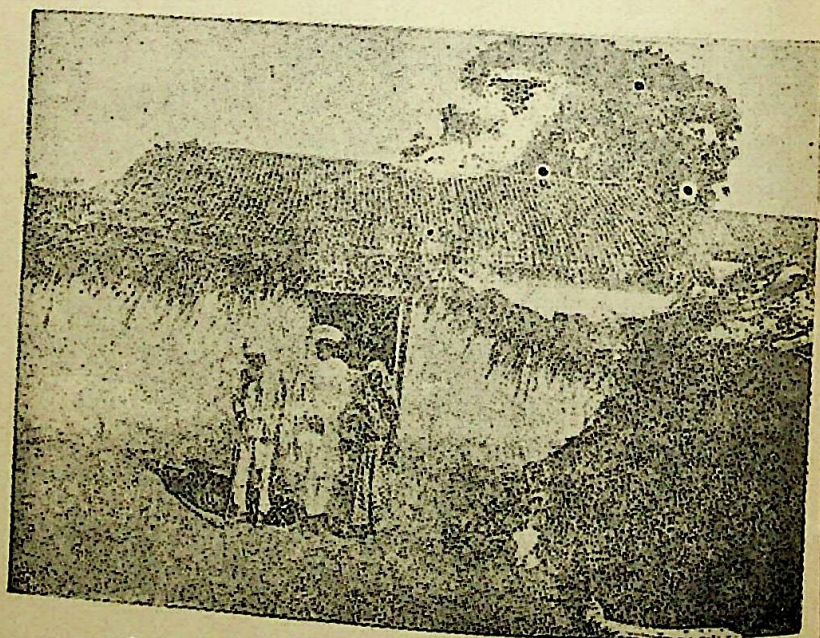
टंकारा का वह मकान : जिसमें मूलशंकर पैदा हुए

संवत् १८९४ में शिवरात्रि के दिन रात्रि जागरण करते हुए मूलशंकर ने शिवमूर्ति पर चूहे को चढ़कर भोग-प्रसाद खाते हुए देखा तो उसके मन में शंका हुई कि जो एक चूहे से अपनी रक्षा नहीं कर सकता वह संसार का निर्माता प्रभु नहीं। बालक के हृदय में अध्यात्म का अंकुर शिवरात्रि के दिन उदय हुआ। इसी से इसे बोधरात्रि भी कहते हैं।
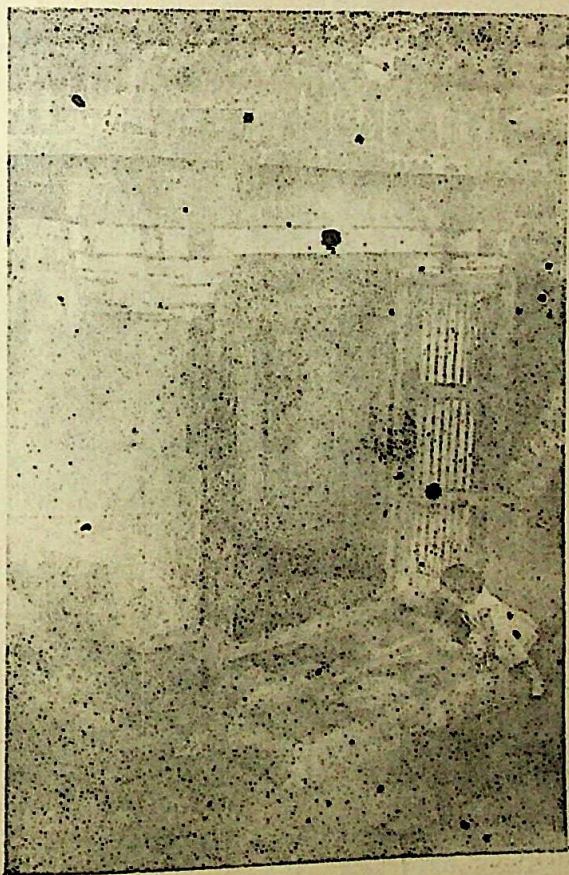
टंकारा का वह मन्दिर जहाँ मूल को बोध हुआ

जो शंका उभरी तो उभरती गई। बहन और चाचा की मृत्यु ने पूरी तरह झकझोर दिया और जीवन व मृत्यु का प्रश्न हल करने के लिए बालक मूलशंकर उत्सुक हो उठा।

संवत् १९०२ में मूलशंकर ने गृह त्याग का संकल्प लिया और एक रात घर से सच्चे प्रभु की खोज में निकल पड़ा।
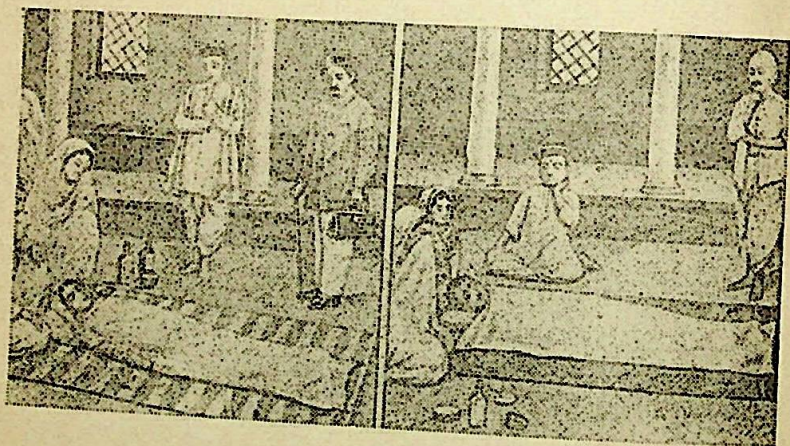
बहन और चाचा की मृत्यु का दृश्य

परिवार में पुत्र के घर छोड़ने से कुहराम मचा, खोज आरम्भ हुई और पिता ने सिद्धपुर के मेले में मूलशंकर को ढूंढ़ ही लिया।

पर जिसका संकल्प दृढ़ था वह वीरव्रती पिता के स्नेह बन्धन में न बंध सका। पुनः मार्ग में ही निकल गया और फिर ज्ञान-सत्य की खोज का संकल्प पूरा करने हेतु ब्र० शुद्ध चैतन्य बना और लक्ष्य पूरा करने में लग गया। इसके बाद समय बीतता गया।
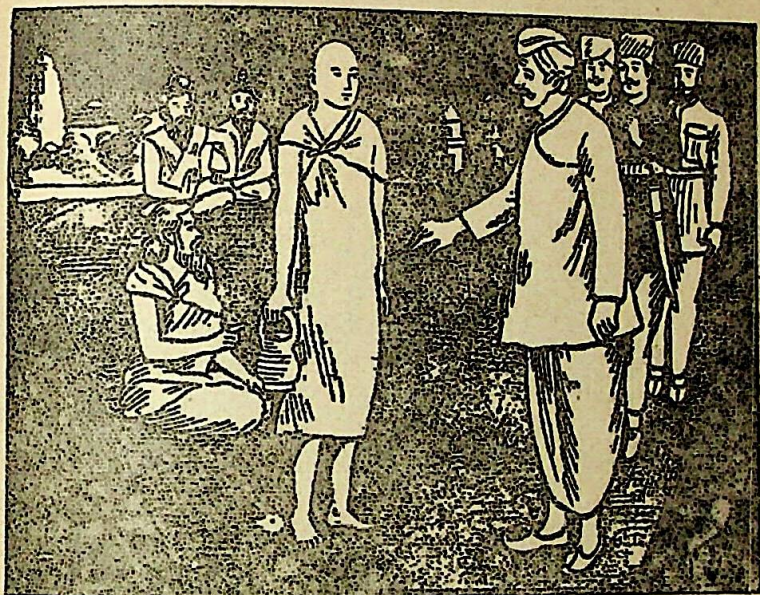
सिद्धपुर के मेले में पिता से अन्तिम भेंट

संन्यास लेकर मूलशंकर दयानन्द बन गया। दृढ़ व्रती होकर तप में लीन हुआ। इच्छा थी सत्य और असत्य का भेद जान कर सत्य को समझने की। चाह बढ़ती गई, खोज जारी रही और दिन बीतते गए कि—एक दिन शिष्य दयानन्द ने मथुरा में गुरु विरजानन्द का द्वार खटखटाया—

गुरु ने पूछा कौन है ?

उत्तर मिला कि यही तो जानना है कि मैं कौन हूँ ?

गुरु प्रसन्न हुए। सच्चा ज्ञान दिया और शिक्षा पूर्ण हुई। ज्योति की खोज का संकल्प पूरा हुआ और विदाई के समय दयानन्द गुरु के चरणों में लौंग लेकर उपस्थित हुए।

गुरु विरजानन्द बोले दयानन्द ! मुझे यह गुरु दक्षिणा नहीं चाहिए। दक्षिणा देनी है तो संकल्प करो कि धरती से अज्ञान—अन्धकार मिटाओगे।
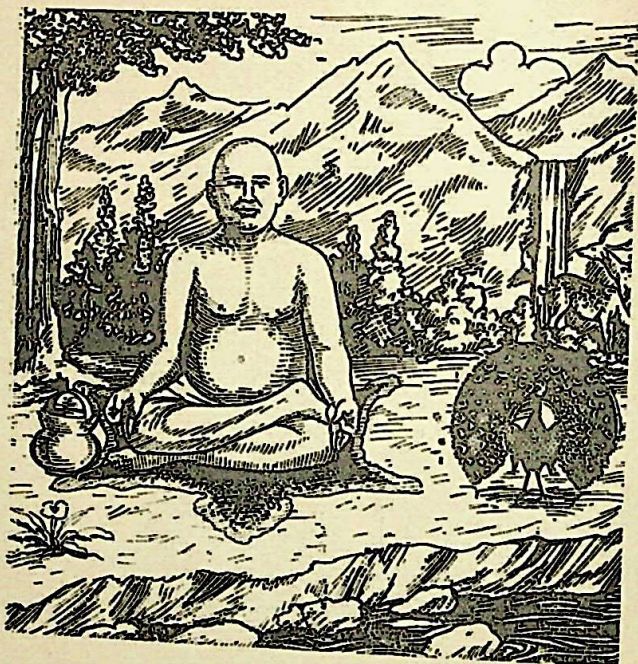
तपस्या में लीन : दयानन्द
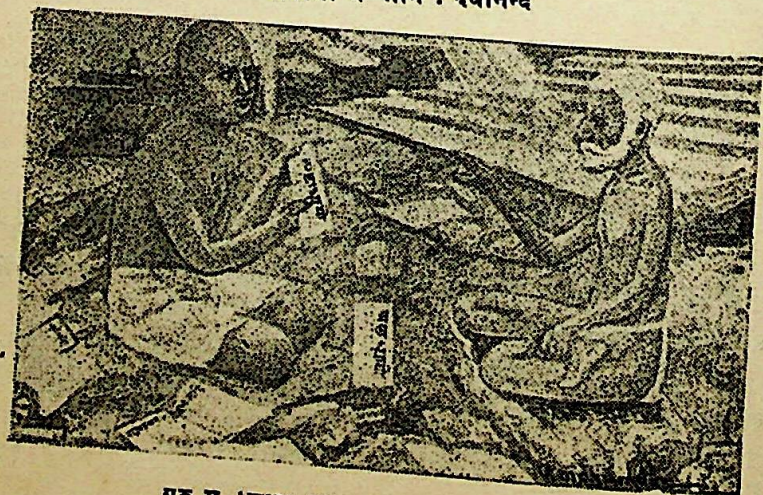
गुरु से शिक्षा ग्रहण करते हुए : दयानन्द
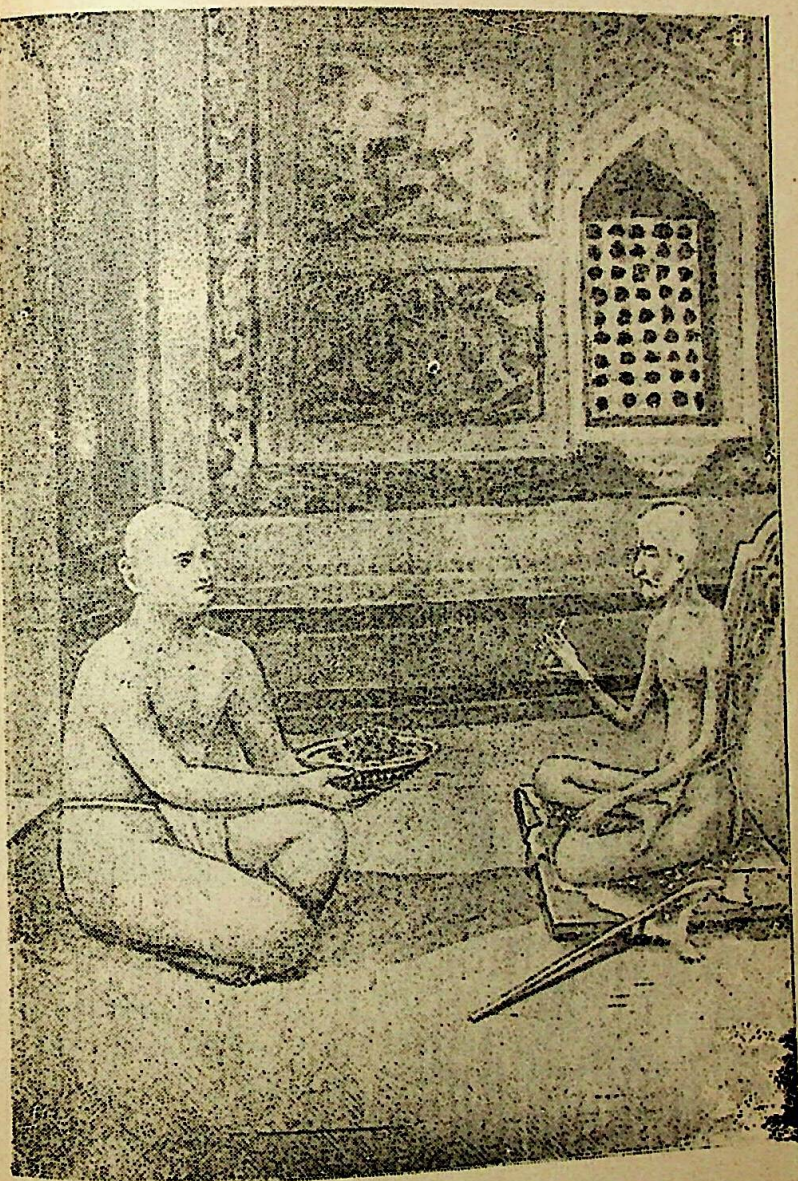
गुरु चरणों में लौंग भेंट करते हुए : दयानन्द

संसार प्रभु के ज्ञान को भूलकर भटक गया है, दयानन्द—जाओ, अन्धका[र]
मिटाकर वेद-प्रकाश फैलाओ, !

सच्चे शिष्य ने श्रद्धा से सिर झुकाया। प्राणों की अन्तिम श्वास त[क]
गुरु की आज्ञा पूर्ति का व्रत लिया। धन्य था शिष्य······दयानन्द।

वेद का प्रकाश और प्रभु का सहारा लेकर दयानन्द ने युग को न[ई]
चेतना दी। पाखण्डों के दुर्गम दुर्ग पर प्रबल प्रहार किए। दीन-दुखी-निर्बल
की रक्षा में दयानन्द ने जीवन लगा दिया। गो रक्षा को दयानन्द ने राष्ट्र की
उन्नति की आधार शिला समझा और अपनी पूरी शक्ति से गो हत्या बन्द
कराने के लिए यत्न किया—
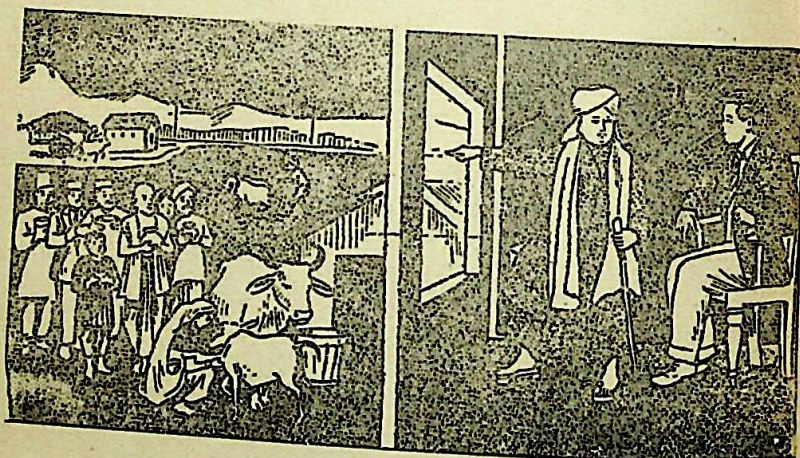
गोरक्षक दयानन्द : कर्नलब्रुक्स से वार्ता करते हुए

देश में फैले पाखण्डों पर प्रबल प्रहार करने के लिए हरिद्वार कुम्भ में
पाखण्ड-खंडिनी पताका जा कर लहरायी। हलचल मच गई सारे भारत में
पोप—पुजारी—मुल्ला सारे ही घबराए, कांपने लगे।

और तब पाप के ठेकेदारों ने सत्य के प्रसारक को समाप्त करने की

ठानी और महर्षि दयानन्द को पान में विष दे दिया। स्वामी जी का भक्त तहसीलदार सैयद मुहम्मद जब अपराधी को गिरफ्तार कर लाया तो स्वामी जी ने कहा—

तुम ने यह क्या किया······
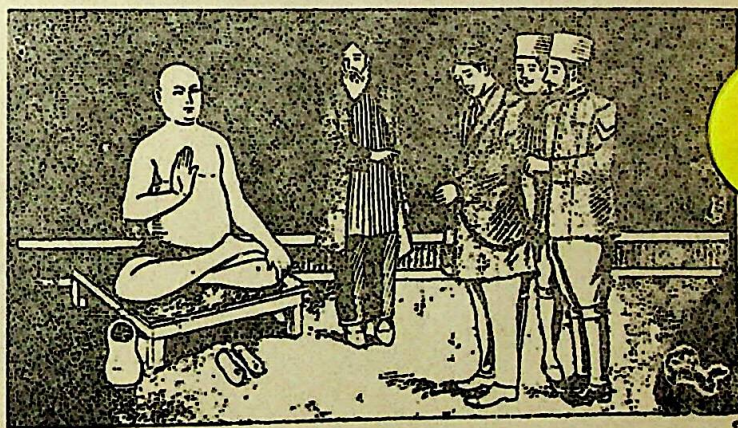
इसे छोड़ दो मैं संसार में कैद कराने नहीं सभी को कैद से छुड़ाने आया हूं। सचमुच दयानन्द की अपार दया का उदाहरण खोजने से भी मिलना कठिन है।

महर्षि दयानन्द अपूर्व तपस्वी थे। उनका शरीर वज्र के समान था। एक दिन स्वामी जी योगाभ्यास में लीन थे। बदायूं का कलेक्टर अंग्रेज भी दर्शनार्थ आया और उसने पूछा कि—

अपूर्व योगी दयानन्द
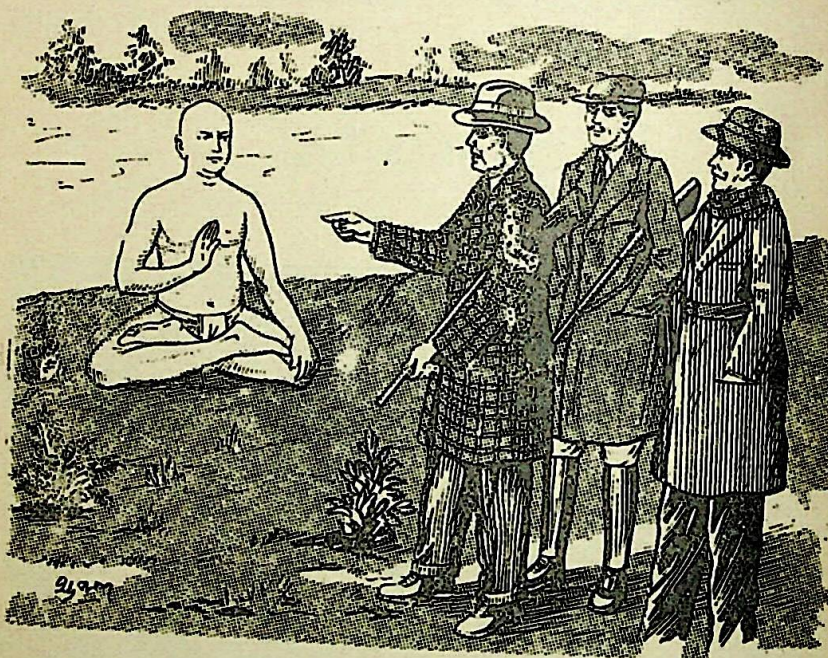
क्या आपके शरीर को ठंड नहीं लगती?

स्वामी जी मुस्कराए और कहा कि जैसे आपके मुख को ठंड नहीं लगती वैसे ही मेरे शरीर को भी नहीं लगती। यह सब अभ्यास का चमत्कार है।

सचमुच हमारा गुरु दयानन्द हर दृष्टि से महान् था। महर्षि दयानन्द महान् बलवान भी थे। उन्होंने—

राव कर्णसिंह की तलवार के ऋषि ने टुकड़े कर दिए।

अभिमानी राव कर्णसिंह का अभिमान, जो उन्हें मारने आया था, उसकी तलवार तोड़कर समाप्त कर दिया।

इस तरह प्रत्येक दृष्टि से अज्ञान के उपासकों को परास्त करते हुए देव दयानन्द ने काशी की विद्यानगरी पहुंच पंडित मंडली को चुनौती दी। काशी में हलचल मच गई। दयानन्द का पांडित्य अजेय था—

मूर्ति पूजा, अन्ध विश्वास और हर तरह के पाखण्डों की समाप्ति के लिए दयानन्द कृत संकल्प थे।
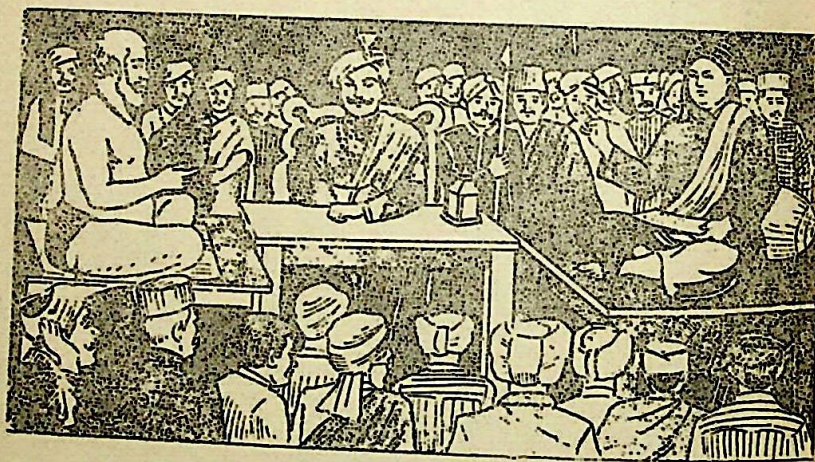
महर्षि के अपूर्व पांडित्य से सर्वत्र खलबली मच गयी।

काशी शास्त्रार्थ में भी वेदों के परम प्रचारक और अभूत पूर्व विद्वान् दयानन्द ने पंडितों को परास्त कर सत्य की विजय पताका को लहराया। देश की स्वतन्त्रता के लिए भी दयानन्द ने अलख जगायी। सर्वत्र घूम-घूमकर राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न की।

भारत के जंगी लाट से वार्ता करते हुए : दयानन्द
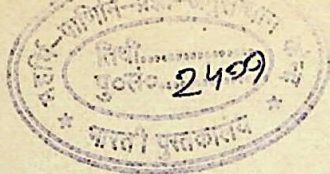
और भारत के जंगी लाट से वार्ता कर उन्हें भी भारत की भावनाओं से परिचित किया।

ब्रह्मचर्य का प्रताप
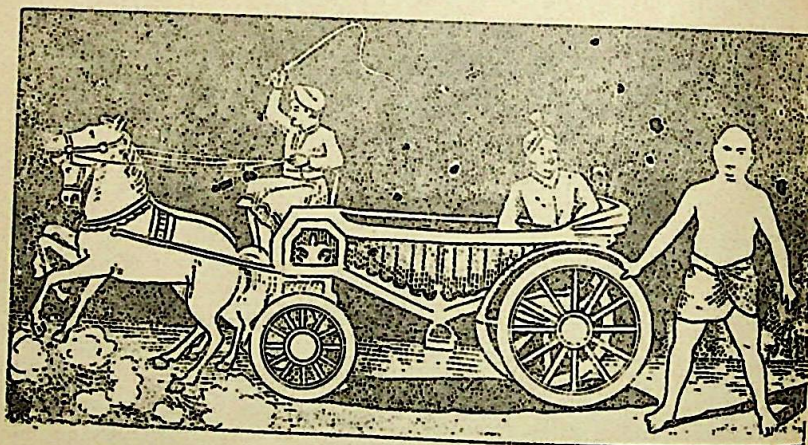
दो घोड़ों की बग्घी ऋषि ने एक हाथ से रोकी।

जालन्धर में सरदार विक्रमसिंह जी की जिज्ञासा पर दो घोड़ों की बग्गी एक हाथ से रोक कर अपने ब्रह्मचर्य की धाक भक्तजनों के मानस पर अंकित की।

इस तरह सर्वत्र वेदों का संदेश फैलाते, अंधकार मिटाते—प्रचार करते हुए दयानन्द ने देश को जगाया, उठाया और अपने सच्चे स्वरूप से परिचित कराया।

भारत के राजाओं को संगठित करने के लिए उन्होंने पूरा यत्न किया।

परिणाम स्वरूप नन्हीं जान वेश्या स्वामी जी की शत्रु बन गयी।
जगन्नाथ पाचक ने स्वामी जी को दूध में विष दिया।

जोधपुर नरेश को वेश्यागमन के लिए ऋषि दयानन्द ने बुरी तरह फटकारा।
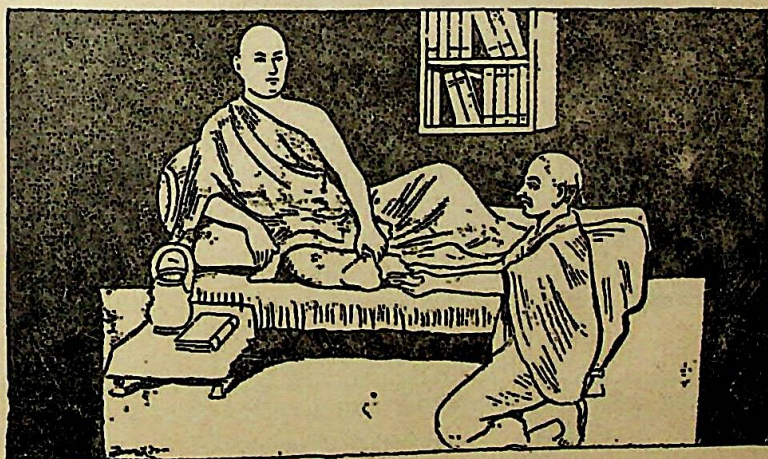
जगन्नाथ पाचक को ५००) की थैली देते हुए दयानन्द

पर वाह रे ! महान् देव दयानन्द उन्होंने अपने हत्यारे को भी ५००) रु० देकर कहीं दूर चले जाने का उपदेश दिया ।

बहुत उपचार हुआ पर स्थिति बिगड़ती गई । सुधर न सकी और अन्त में दीपावली के दिन भारत के उद्धारकर्ता, संसार के सुधारक सच्चे मानव हितैषी दयानन्द ने अपनी इहलोक लीला पूर्ण की ।
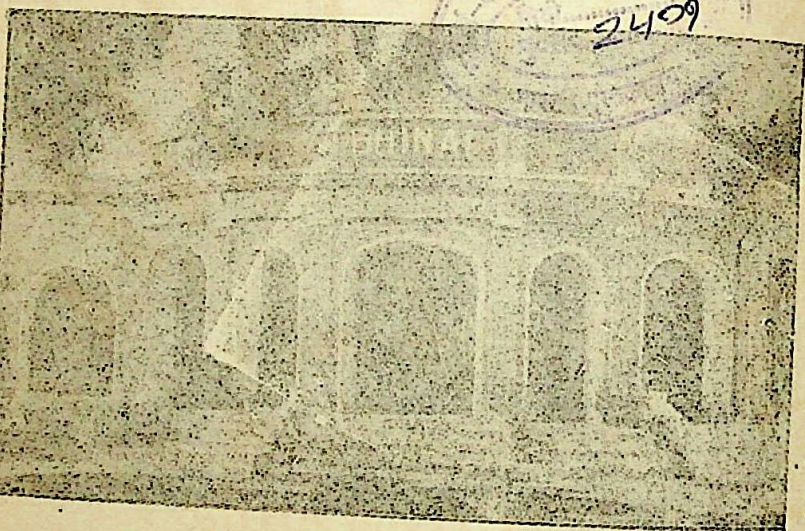
वह भवन जहाँ महर्षि दयानन्द ने प्राण छोड़े ।
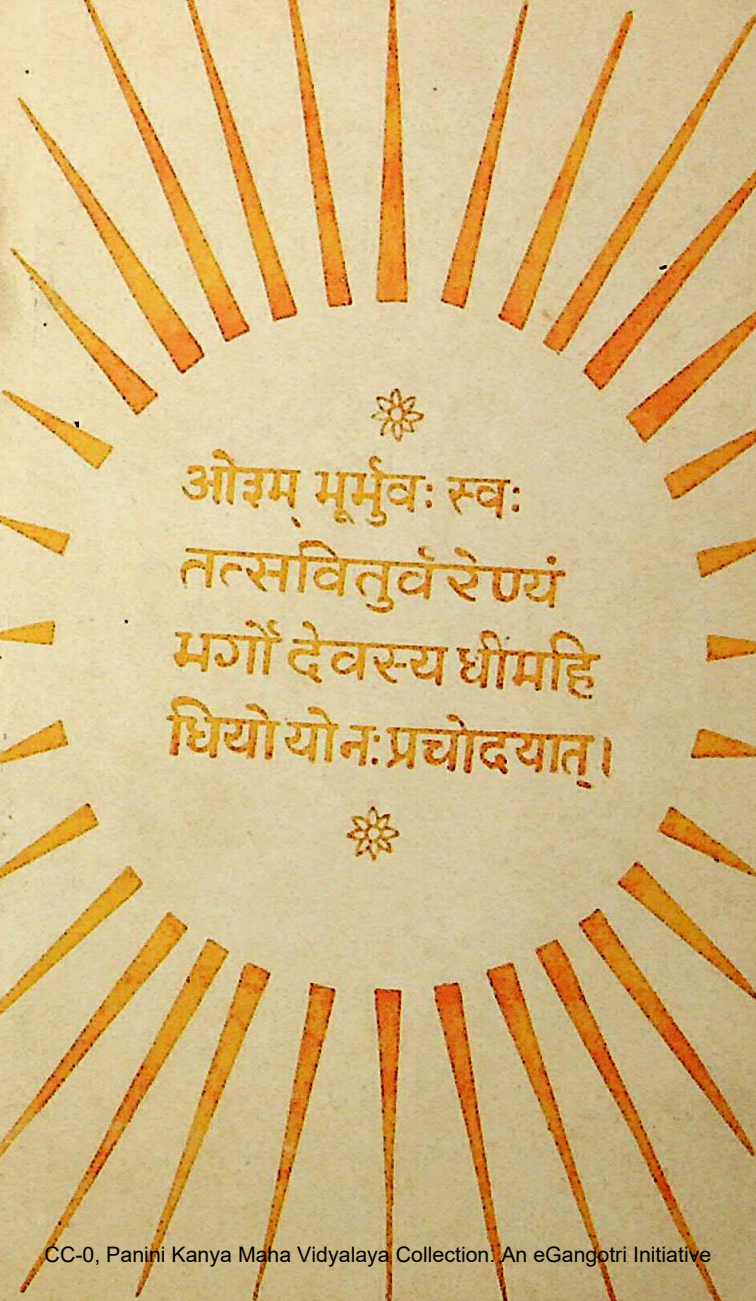
युग पुरुष दयानन्द की यह संक्षिप्त गाथा इस भावना से प्रस्तुत है कि हम उस महान् पुरुष के जीवन की सुगन्ध से अपना जीवन महका सकें ।

आर्य समाज के रूप में महर्षि दयानन्द आज भी जीवित हैं । मत-मतान्तरों की समाप्ति, भौतिकवाद का उन्मूलन, अध्यात्म का प्रसार और संसार के समस्त मनुष्यों को एक सूत्र में पिरोने का महान् कार्य हमें आज भी दयानन्द के काम पूरा करने का निमंत्रण दे रहा है ।

महर्षि दयानन्द के दिव्य स्वप्नों की पूर्ति के लिए दयानन्द के अनुयायियो आओ ! दयानन्द के जन्म दिवस पर हम सब मिलकर प्रतिज्ञा करें—दयानन्द का काम पूरा करेंगे । उसी के लिए हम जियेंगे, मरेंगे ।

—भारतेन्द्र नाथ

मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक श्रीमती पण्डिता राकेश रानी द्वारा
कैसलन प्रस विल्ली में मुद्रित ।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।